ऽ।।

१२

T

ध
५२
१५८
वि
१५५

श्रीः ।

श्रीभर्तृहरिकृतम् ।

नीतिशृंगारवैराग्यशतकत्रयं

योद्धपुरीय ऋषभदत्तशास्त्रिकृत

भाषाटीकया विभूषितम्.

तदेवेदम्.

पंडित श्रीधरशिवलालप्रतिष्ठापित
ज्ञानसागरमुद्रणालयाधिपतिना
मुद्रयित्वा प्रकाशितम्.

ज्ञानसागर छापखाना—मुंबई.

शके १८१६ स. १८९४

माघ शुद्ध ९

यह पुस्तक सन १८६७ के आक्ट २५ मुजब
रजिष्टर कियाहै.

T

T

पुस्तकालय, काशी
१२

श्रीः ।

अथ भर्तृहरिकृतम् ॥

नीतिशतकं प्रारभ्यते ॥

मंगलाचरणं ॥

गणराजं नमस्कृत्य वरदांच सरस्वतीं॥
हरिणा कृतग्रंथस्य भाषाटीकाप्रतन्यते १

एक समय भर्तृहरि राजाकों अमृतफलके संयोगसें बैराग्य उत्पन्न भया. तब यह नीतिशतक श्रृंगारशतक अरु वैराग्यशतक ऐसे नामक ग्रंथको बनाया उसकीमैं अबबुद्ध्यनुसार भाषाटीका बनाताहूं

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मा
त्रमूर्त्तये ॥ स्वानुभूत्येकसाराय न
मः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

टीका–दसोंदिशा अरु तीनकाल भूत भविष्यत वर्त्तमान इसके बीचमे कभी नाश नहीं होता ऐसा अनंत चैतन्यमूर्त्ति अरु आपहीके अनुभवयुक्त शांतस्वरूपी है तेज जिनका ऐसे ब्रह्मस्वरूपकों मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

यां चिन्तयामि सततं मयि सा वि

रक्ता साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥ २ ॥

टीका—कोई समय एक ब्राह्मणकुं अमृतफल मिला तब ब्राह्मणने ऐसा विचारा की भर्तृहरि राजा बडा धर्मज्ञ अरु धर्मसें पृथ्वीकी पालना कर्त्ता है इसकुं फल देना अच्छा है ऐसा विचारके वो फल राजाकुं दिया राजाने ऐसा विचारा कि मेरी स्त्री प्राणोंसेभी प्यारी है यूं जानके वो फल स्त्रीकुं दिया उस राणीने आपके जारपुरुषकुं फल दिया उस जार पुरुषने वो फल कोई वेश्याकुं दिया उस वेश्याने फिर वोही अमृतफल पीछा उसीही राजाकुं दियां तब वो राजाने उस फलकूं देखकें विचार किया अरु निश्चय करनेसें सब हाल मालुम हुवा तब वैराग्यभावसें ऐसें कहने लगा कि मेरी स्त्रीकूं धिक्कार है उस जार पुरुषकूं धिक्कार है इस वेश्याकूं धिक्कार है अरु मेरेकूं धिक्कार है यह सब कृत्य कामदेवका किया हुवा है इस वास्ते कामदेवकूं धिक्कार होना ॥ २ ॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते

विशेषज्ञः ॥ ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मा
पि च तं नरं न रंजयति ॥ ३ ॥

टीका–हित अहितकी बात नहि जाने वो मूर्ख सो तो सुखसें समझाया जाता है अर्थात् उसकूं तो जैसा कहै तैसाही धारलेता है अरु युक्तायुक्तकूं ससमजनेवाला ज्ञानी तो अतीव सुखसे समज लेता है परंतु दोनूसे बिलक्षण मूर्ख पुरुष तो ब्रह्मासेंभि समजाया नहि जाता है ॥ ३ ॥

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रां
कुरात् समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मि
मालाकुलम् ॥ भुजङ्गमपि कोपितं
शिरसि पुष्पवद्धारयेत् न तु प्रतिनि
विष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

टीका–मूर्खजनका चित्त कोई वश नही कर सकता वो दृष्टांतद्वारा वर्णन करते हैं मकरके मुखकी दाढमेंसे मणीकुं कोई निकाल सकता है और चंचल तरंगयुक्त समुद्रको कोई तिरसकता है और कोपवान भुजंगकौं कोई फूलमालाकी माफक मस्तकपर धार सकता है परंतु मूर्खजनके चित्तकूं कोई समझा नही सकता ॥ ४ ॥

T

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः
पीडयन् पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ॥ कदाचिदपि
पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत् न तु
प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥५॥

टीका–कोई यत्नसें पीलनेसें वेलुसेंभि तैल निकल सकता है और प्यासाहुवा मृगतृष्णाकाभि जलकों पीता है और कोई समय फिरता हुवा पुरुष शशियेके श्रृंगकोभि प्राप्त होता है परंतु मूर्खजनके चित्तको कोई वश नही कर शकता ॥ ५ ॥

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं
समुज्जृम्भते छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ॥ माधुर्यं
मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां
सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥ ६ ॥

टीका–व्यालजो हस्ति तिनकों कोई कमलके कोमल तंतूसें बांधनेकों चाहता है और शिरीष पुष्पके अग्रभागसें वज्रमणीको छिद्र करना चाहता है अरु (क्षारांबुधि) लून समुद्रको कोई मधुबिंदूसें मधुर

करना चाहता है यह तीनूं वार्ता नहिं होनेकी सो तों कभि हो भी सकती हैं परंतु सत्पुरुषोंके अमृततुल्य वचनोंसे मूर्खकों सन्मार्गमें कोइभि न हिला सकता॥६॥

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं
छादनमज्ञतायाः ॥ विशेषतः सर्वविदां
समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्॥७॥

टीका—मूर्खनकि मूर्खताका आच्छादन मौन विधाताने रचा है वो मौन आपके आधीन है अरु गुणकारक है फिर पंडितनकी सभाके बीचमेभि मौन मूर्खनके आभूषणरूप है ॥ ७ ॥

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदा
न्धः समभवम् तदा सर्वज्ञोऽस्मी
त्यभवदवलिप्तं मम मनः ॥यदा
किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवग
तम् तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव
मदो मे व्यपगतः ॥ ८ ॥

टीका—जिस समयमें मैं अल्पज्ञ रहा तब हाथीके समान मदांध था अरु मेरेमनमें ऐसा गर्व था कि में सर्वज्ञहूं और जब मुझें पंडितोंसें कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त हुवा तब मैनें जाना कि मै मूर्खहूं बत मेरा वो मद ज्वरकी माफक उतरगया॥ ८ ॥

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगर्हि
जुगुप्सितम् निरुपमरसं प्रीत्या
खादन्नरास्थि निरामिषम् ॥ सुर
पतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य
न शङ्कते नहि गणयति क्षुद्रो ज
न्तुः परिग्रहफल्गुताम् ॥ ९ ॥

टीका–जैसें बहुत कीडोंसेयुक्त लारसेंभरा दुर्गंध सहित निंदित नीरस और निर्मांस ऐसे मनुष्यनके हाडकों खाताहुआ श्वान समीपमें खडेहुए इंद्रकोंभि देखके शंकता नही है अर्थात् निंद्यकर्म कर्त्ताही रहता है तैसें क्षुद्र नीचमनुष्य आपके परिग्रहकी तुच्छताकों नहि गिनता है ॥ ९ ॥

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरस
स्तत्क्षितिधरम् महीध्रादुत्तुङ्गाद्
वनिमवनेश्चापि जलधिम्॥ अधो
गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकम
थवा विवेकभ्रष्टानां भवति विनि
पातः शतमुखः ॥ १० ॥

टीका–विष्णुपादोदकी गंगा स्वर्गसें शिवके मस्तकपर पडती है पीछे शिवके मस्तकसें पर्वतपर पडती

है पर्बतसें पृथ्वीपर आयके समुद्रमें मिलजाती है जैसें गंगा नीची आतीहुई अनेक आकारकी होतीहै अरु स्वल्प पद हो जाती है तैसें विवेकभ्रष्ट मूर्खजनकी अनेक प्रकारकी लघुता हो जाती है ॥१०॥

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण
सूर्यातपो नागेन्द्रो निशितांकुशेन सम
दो दण्डेन गोगर्दभौ ॥ व्याधिर्भेषजस
ङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम् सर्व
स्यौषधमस्ति शास्त्रविहीतं मूर्खस्य ना
स्त्यौषधम् ॥११ ॥

टीका—जल करकें अग्नि शांत हो जाता है और छत्रसें सूर्यका आतप मिटजाता है और मदोन्मत्त हस्ती तीक्ष्ण अंकुशसें वश हो जाता है और दंडसें गौ अरु गर्दभ वश हो जाते हैं और औषधसें व्याधि मिट जाती है और नाना प्रकारके मंत्रादिकनसें विष निवृत्त हो जाता है ऐसें सबनका औषध है परंतु मूर्खनकि मूर्खता मिटानेका कुछभि औषध नहीं है॥ ११ ॥

साहित्यसंगीतकलाविहीनःसाक्षात्प
शुः पुच्छविषाणहीनः ॥ तृणं न खा

T

दन्नंपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं प
शूनाम् ॥ १२ ॥

टीका—साहित्य संगीतकी कलाका जिसकों ज्ञान नहि वो मनुष्य पुच्छ अरु श्रृंगरहित साक्षात् पशु है तृण नही खाता अरु जीता है यह इतर पशुओंका उत्तम भाग्य है ॥ १२ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानम् ज्ञा
नं न शीलं न गुणो न धर्मः ॥ ते
मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपे
ण मृगाश्चरन्ति ॥ १३ ॥

टीका—जिनकों विद्या नहि तप नहि दान नहि ज्ञान नहि शील जो अच्छा व्रत नहि गुण और धर्म नहि वह मर्त्यलोकमे पृथ्वीपर भारभूत मृगतुल्य मनुष्यरूकरपके विचरते हैं ॥ १६ ॥

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ॥
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥१४

टीका—पर्वतादिक विषमअटवीमे वनचर व्याघ्रादिकनसें सहित विचरणा अच्छा है परंतु मूर्खजनका मिलाप तो इंद्रभवनमेंभि अच्छा नही ॥ १४ ॥

॥ इतिअज्ञानिंदाप्रकरणम् ॥

अथविद्वज्जनप्रशंसा

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शि
ष्यप्रदेयागमा विख्याताः कवयो व
संति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ॥
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयो
ह्यर्थं विनापीश्वराः कुत्साःस्युः कुपरी
क्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः १५

टीका—व्याकरणशास्त्रयुक्त शब्दसें सुंदर है वाणी जिनकी और शिष्योंकों पढाई है वेद विद्या जिनने अरु पृथ्वीपर प्रसिद्ध है ऐसे कवि विद्वज्जन जिसराजाके देशमें निर्धन होके वसते हैं वह उसराजाकी मूर्खता है अरु कवि तो अर्थ विनाभि ससर्थही है जैसें बहुमूल्य मणीका स्वल्पपरीक्षावाले जव्हेरी लोक मौल्य कमती कर देते हैं तो वह दूषण परीक्षकका है परंतु मणयस्तु बहुमूल्याएव ॥ १५ ॥

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति य
त्सर्वदा ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशंप्राप्नो
ति वृद्धिं पराम्॥कल्पांतेष्वपि न प्रयाति नि
धनं विद्याख्यमंतर्धनम् येषांतान्प्रति मान
मुझ्झत नृपाः कस्तैः सहस्पर्धते ॥ १६ ॥

T

टीका—अहो राजालोको जिनोंके विद्यारूप अंतर्धन है तिनसें ईर्षा मतकरो मान छोडदो क्योंकी उनके समान दूसरा कौन है कैसा है वह विद्यारूपधन तस्करोंसे चोराया नही जाता है और सर्वदा सुखकि प्राप्ति करनेवाला है और विद्यार्थीरूप याचकजनोंकों दिया हुवा विद्यारूपीधन निरंतर वृद्धिकों प्राप्त होता है अरु प्रलयकालमेंभि वो धन नाश नहि होता ऐसे धनवानोंसें ईर्षा कौन करै ॥ १६ ॥

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमंस्था
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ॥
अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम्
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् १७

टीका—पुनःकथयति (अधिगत इति) प्राप्तभयोहै परमार्थ जिनोंकों ऐसे पंडितनका अपमान मतकरो यह सामान्य द्रव्यरूपलक्ष्मी तिनोंकुं रोकनही सकती अत्रदृष्टांतः जैसें नवीन मदलेखासें श्यामहै गंडस्थलजिनका ऐसे (वारण) हस्तियोका रोकना कमलतंतूसें नहि होता है तैसें ॥ १७ ॥

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ॥
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम् वै

T

दग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ १८ ॥

टीका–जो जिनका स्वाभावीक सद्गुणहै वो किसीसें हऱ्यानहिजाता है (अत्रदृष्टांतः) जो विधाता हंसपर कोपेतो कमलनीके वनमेरहना तो छोडाय देता है परंतु क्षीरनीरकों जुदाकरनेकी जो हंसके चतुराईकी शोभा है उसकों तो ब्रह्माभिं नहि हर सकता

केयूरा न विभूषयंति पुरुषं हारा न चंद्रो
ज्ज्वला न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं
नालंकृता मूर्द्धजाः ॥ वाण्येका समलंकरो
ति पुरुषं या संस्कृता धार्यते क्षीयंते खलु
भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥१९॥

टीका–(केयूर) भुजबंध और चंद्रवत् उज्वल मोतियनके हार और स्नान और विलेपन चंदनादि और पुष्प अरु भूषित केश यह सर्व पदार्थ पुरुषकों भूषितनहि करसकते हैं संस्कृत सहित एक वाणी है वोही पुरुषको अलंकृत कर्त्ती है क्योंकि और आभूषण तो नाश होजाते हैं परंतु वाणीरूप आभूषण नाश नहि होताहै इस्सें वाग्भूषणहै वोही भूषण है॥१९॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगु
प्तं धनम् विद्या भोगकरी यशःसुखकरी

T

विद्या गुरूणां गुरुः॥ विद्या बंधुजनो वि
देशगमने विद्या परं दैवतम् विद्या राज
सुपूजिता नहि धनं विद्याविहीनःपशुः २०

टीका—यह विद्या मनुष्यका अधिकरूप है और प्रच्छन्न गुप्त धन है और विद्या भोगोंकों करनेवाली है और यश कीर्त्ति अरु सुखकी करनेवाली है और विद्या गुरूनकी गुरु है और विदेशमें विद्याहि बंधुजन है और विद्या परमदैवत है अरु विद्यावान् राजसभामें पूजित होते हैं परंतु धनवंत पूजा नहिपाते हैं इस्सें विद्यारहित है वो पशु है ऐसा समजना ॥ २० ॥

क्षांतिश्चेत्कवचेन किं किमरिभिः क्रोधो
स्ति चेद्देहिनाम् ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि
सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्॥ किं सर्पैर्यदि
दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि व्री
डा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति
राज्येनकिम् ॥ २१ ॥

टीका—जो मनुष्यनके क्षमा है तो कवचसें क्या प्रयोजन और जो क्रोध है तो शत्रूका क्या काम और जात है तो अग्नीका क्या प्रयोजन और इष्ट मित्र हैं तौ दिव्य औषधियोंसे क्या फल और दुर्जन विद्यमानहैं

तो सर्पका क्या प्रयोजन और जिसको निर्दोष विद्याहै तो उसको धन संचय करनेका क्या प्रयोजन और जिसके लज्जा है तो उसके और भूषणसें क्या प्रयोजन और जिसकी सुंदर कविता है तो उसें राज्यका क्या ॥ २१ ॥

दाक्षिण्यं स्वजने दया परजने शाठ्यं स
दा दुर्जने प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने
विद्वज्जनेष्वार्जवम् ॥ शौर्यं शत्रुजने क्षमा
गुरुजने नारीजने धूर्तता ये चैवं पुरुषाः
कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः॥२२

टीका–स्वजनपर (दाक्षिण्यं) उदारचित्त और परजनपर दयाभाव और दुर्जनपर शठता साधुजनसें प्रीति राजसभामें नीति पंडितसें नम्रता शत्रुजनोंसे शूरता बडेलोगसें क्षमा और स्त्रियोंमे- धूर्त्तता जो पुरुष इसरीतिसें कलामें कुशल हैं तिन्हींमे लोकाचारकी स्थिति है ॥ २२ ॥

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ॥
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्२३

टीका–यह सत्संगति मनुष्योंके क्या काम नहिं करती है सो कहो अर्थात् सबकाम स्थिति करती है बुद्धिकी (जडता) मूर्खताकों हरती है और वाणीमें सत्यताकों सिंचती है और मानकों बडाती है और पापकों दूरकरती है और चित्तकों प्रसन्न रखती है और दिशाओंमे कीर्त्तिकों विस्तृतकर्त्ती है ॥ २३ ॥

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्

टीका–ऐसे पुण्यवान् रससिद्ध कवीश्वर सबनसें उत्तम हैं क्योंकि जिनोंकी यशरूप कायामें जरामरणरूप भय नहि ॥ २४ ॥

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी
प्रसादोन्मुखः स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परि
जनो निःक्लेशलेशं मनः ॥ आकारोरुचि
रःस्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखम्
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते दे
हिना ॥ २५ ॥

टीका–अच्छे व्रतका धरणवाला पुत्र और पतिव्रता स्त्री और कृपाकारक स्वामी स्नेहयुक्त मित्र अवंचक कुटुंबीलोग और क्लेशरहित मन अरु सुंदर

आकार और स्थिरलक्ष्मी और विद्यायुक्त मुख इतनीवस्तु जिसपर वैकुंठपति बांछितकेदेनेवाले विष्णु प्रसन्नहोते हैं उसकों मिलती हैं ॥ २५ ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः
सत्यवाक्यम् काले शक्त्या प्रदानं युवति
जनकथामूकभावः परेषाम् ॥ तृष्णास्रो
तोविभङ्गोगुरुषु च विनयः सर्वभूतानुक
म्पा सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः
श्रेयसामेषपंथाः ॥ २६ ॥

टीका—जीवकी घातसें निवृत्ति, परधन हरणेसें मनरोकना, सत्यबोलना, समय आये यथाशक्ति दानदेना, परस्त्रियनकि कथामें मौन रखना, तृष्णाके प्रवाहकों रोकना, गुरुका विनयकरना, और सर्वभूतप्राणिनके बीचमे दया रखना, और शास्त्रकी मर्यादमे चलना यह सब मनुष्योंके कल्याणका मार्ग है ॥२६॥

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति २७

टीका—नीचजन तो विघ्नके भयसें कछुकार्यका

प्रारंभभि नहि करते हैं और मध्यमपुरुष विघ्नकेम भयसें आरंभकियेहुए कार्यकों छोड देते हैं और उत्तम पुरुष अनेक विघ्नकरकेयुक्त होजाय तथापि आरंभकियेहुवे कार्यको त्याग नहि करते हैं ॥ २७ ॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभंगेप्यसुकरम्
त्वसंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम्
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् २८

टीका—न्याययुक्त अपनी जीविका वोहीप्रिय हैं और प्राणांतकष्टआयेभि (मलिन) पापकर्म दुष्कर है और दुष्टपुरुषके पास याचना नहि करना अरु अल्पधनवाले मित्रकेपासभि याचना नहि करना और (विपदि) आपदा आये उन्नति रखना अरु महापुरुषोंके आचरणमें चलना यह असिधारा समान व्रतका सत्पुरुषोंको किसने उपदेशकरा है किंतु स्वाभाविकहि गुण है ॥ २८ ॥

॥ इति विद्वत्प्रशंसा ॥

॥ अथ मानशौर्यप्रशंसा ॥

क्षुत्क्षामोऽपिजराकृशोऽपि शिथिलप्रायो
पि कष्टां दशामापन्नोपि विपन्नदीधितिर

पि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ॥ मत्तेभेन्द्रविभि
न्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः किं जीर्णं
तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२९॥

टीका–क्षुधाकरके हीनसत्वभया है और जरावस्थाकरके (कृश) दुर्बल होगया है और शिथिल प्राय होगया है और ऐसी कष्टदशाकों प्राप्त हुआ है और तेजहीनभया है और प्राणोंका नाश होरहा है तथापि ग्रासकरनेकी है बांछा जिनकी अरु मानी पुरुषोंके अग्रगण्य ऐसा मदोन्मत्त हस्तिनके भेदनकिंये हुवे कुंभस्थलके मांसका केसरी सिंह आपकी क्षुधाशांतिके लिये क्या सूका घास खाता है अर्थात् नहि खाता है. तैसें सिंहवत अभिमानी पुरुष तुच्छकार्य नहि करता है ॥ २९ ॥

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसम
प्यस्थि गोः श्वालब्ध्वा परितोषमेति न
तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये॥ सिंहो जंबुकम
ङ्कमागतमपि त्यक्त्वा निहंति द्विपम् स
र्वः कृच्छ्रगतोऽपि वांछति जनः सत्वानुरू
पं फलम् ॥ ३० ॥

टीका–(स्वल्प) थोडासा चर्बीलगा हुवा मलिन

और मांसरहित वृषभका हाड पायके श्वान प्रसन्न होता है परंतु उसकी क्षुधा शांति नहि होती है और सिंह तो समीप आयेहुवेभि (जंबुक) स्यारकों छोड कर हस्तीकोंही मारता है ऐसें समस्तजन दुःखयुक्त हौंय तथापि आपकी शक्तिके अनुसार फलकी इच्छा करते हैं ॥ ३० ॥

लांगूलचालनमधश्चरणावपातम्
भूमौ निपत्य बदनोदरदर्शनञ्च ॥
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुंक्ते॥३१

टीका—जैसें श्वान अन्नदेनेवालेके आगे भूमिपर पडके पूंछकों हलाता है और पगकौ चलाता है फिर मुख अरु उदरकों देखाता है ऐसी दीनताकरता है तैसें गजराज नहि करता वह तो अन्नदेनेवालेका मान देखता है अरु बहुतसी प्रार्थनासें खाता है॥३१

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न
जायते ॥ स जातो येन जातेन याति
वंशः समुन्नतिम् ॥ ३२ ॥

टीका—इस फिरते हुवे संसारमें कौन मरके जन्मनही पाया परंतु जन्मतो वोही पाया कि जिसके जन्मसें वंशकि उन्नति बढै ॥ ३२ ॥

कुसुमस्तबकस्येव द्वे गतीस्तो मनस्वि
नाम् ॥ मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत
वनेऽथवा ॥ ३३ ॥

टीका—फूलके गुच्छनकीपरे उत्तम जनोंकी रीति दोय प्रकारकी है कैतो सब लोगोंके मस्तकहीपर शोभित रहेंगे अथवा वनहीमें शुष्कहोके नष्टहो जायंगे

संत्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः संभाविताः
पञ्चषास्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची रा
हुर्न वैरायते ॥ द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनि
शाप्राणेश्वरौ भासुरौ भ्रातः पर्वणि पश्य
दानवपतिः शीर्षावशेषीकृतः ॥ ३४ ॥

टीका—बृहस्पति प्रमुख पांच सात बडे ग्रह हैं तिनसें तो विशेष पराक्रमकि इच्छावाला राहु वैर नहि कर्त्ता है और (पर्वणि) अमावस अरु पूर्णिमाके दिन मस्तकमात्र शेषरहा ऐसा दानवपति राहु सूर्य चंद्रमाकों गिलता है इस्से ऐसा सिद्ध हुवा कि शत्रूकों शेष नहि रखना ॥ ३४ ॥

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफणक
स्थिताम् कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा
स विधार्यते ॥ तमपि कुरुते क्रोडाधी

नं पयोधिरनादरादहह महतां निःसी
मानश्चरित्रविभूतयः ॥ ३५ ॥

टीका–चवदह भुवनकी श्रेणिकों शेष अपने फणपर धारण कर्त्ता है अरु उस शेषकों कमठ अपनि पीठपर सदाधारण कर्त्ता है तिन कूर्मकों समझ अनादरसें वाराहके अधीनकरदेता है ऐसें महत् पुरुषोंके चारित्रनका कछु पार नही है ॥ ३५ ॥

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः ॥
तुषाराद्रेः सूनोरहह पितरि क्लेशविवशे
नचासौसंपातःपयसि पयसांपत्युरुचितः

टीका–मदसहित इंद्रके वज्रका जाज्वल्यमान अग्नीकी ज्वाला समान प्रहारसें पक्षका छेद होता तो अच्छा परंतु (तुषाराद्रि) हिमाचलके पुत्र मैनाककों हिमाचलको कष्ट आये उनकों छोडके अपनी पक्ष बचानेके लिये समुद्रमें जायपडाना उचित नही॥३६

यदचेतनोऽपि पादैःस्पृष्टःप्रज्वलति
सवितुरिव कांतः ॥ तत्तेजस्वी पुरुषः
परकृतविकृतिं कथं सहते ॥ ३७ ॥

टीका–जो चेतनारहित (कांत) सूर्यकांत मणि

है योभि सूर्यकि किरणोंके स्पर्श होनेसें प्रज्वलित होता है तो चेतना सहित तेजस्वी पुरुष परकृत अनादरको कैसे सहन करै ॥ ३७ ॥

सिंहःशिशुरपिनिपतति मदमलिनकपो
लभित्तिषुगजेषु॥ प्रकृतिरियं सत्ववतां
न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥ ३८ ॥

टीका—सिंह (शिशुरपि) बच्चा है तथापि मद झरते हुवे हैं गंडस्थल जिनके ऐसें हस्तीनिके ऊपर पडता है यह तेजस्वी पुरुषोंका स्वभाव है परंतु अवस्था कछु निश्चय कर तेजका हेतु नही ॥ ३८ ॥

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्य
धोगच्छताच्छीलं शैलतटात्पतत्वभि
जनः सन्दह्यतां वह्निना ॥ शौर्ये वैरि
णि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेनविनागुणास्तृणलवप्रायाः सम
स्ता इमे ॥ ३९ ॥

टीका—यह जाति पातालमें जाउ और गुणनके समूह उनसेंभि नीचे जाउ और (शीलं) अच्छावृत पर्वतसें गिरपडो और स्वजन अग्निसें जलजाउ और शूरता रूपी वैरिपर शीघ्रतासें वज्रपातहो ऐसें सब-

नकि हानि होजाउ परंतु हमारे तो एक द्रव्यकी प्राप्तिहोना क्योंकि जिस द्रव्यके विगर यह सब गुण तृण तुल्य हैं ॥ ३९ ॥

॥ इति मानशौर्यप्रशंसा ॥

॥अथ द्रव्यप्रशंसा॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ॥
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
त्वन्यःक्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ४०

टीका–जो इंद्रियां पूर्वथीं वोही हैं और (कर्म) व्यौहारभि सब वोही है और वही प्रबलबुद्धि है और वचनशक्तिभि वही है परंतु एक द्रव्यकि उष्णताके विना अर्थात् धन ब्रिगर पुरुष क्षणमात्रसे और का और होजाता है यह बडा आश्चर्य है ॥ ४० ॥

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ ४१ ॥

टीका–जिनके पास धन है वो मनुष्य कुलीन है वोही पंडित है वोही शास्त्रका वेत्ता है वोही गुण-

ज्ञ है वोही वक्ता और दर्शनयोग्य है क्योंकि सब गुण कांचनका आश्रय करते हैं ॥ ४१ ॥

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात्सु
तो लालनाद् विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुत
नयाच्छीलं खलोपास नात् ॥ ह्रीर्मद्याद
नवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्मै
त्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्त्यागात्प्रमादा
द्धनम् ॥ ४२ ॥

टीका—दुष्ट मंत्रीसें राजाका नाशहोता है, संसारीनके संगसें यतीका, लडानेसें पुत्रका, बिद्याध्ययन विना ब्राह्मणका, कुपुत्रसें कुलका, नीचके संगसें शालका, मदिरापानसें लज्जाका, विगरसंभालनेसें खेतीका, प्रदेशरहनेसें स्नेहका, स्नेहबिगर मित्राईका, अन्यायसें समृद्धिका विगर विचार खरचकरनेसें धनका नाश होता है ॥ ४२ ॥

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति
वित्तस्य ॥ यो न ददाति न भुंक्ते तस्य
तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३ ॥

टीका—दान भोग और नाश यह तीन धनकी गति है जो मनुष्य देता नही अरु खाता नही उसके धनकी

नाशरूप तीजीगति अवश्य हो जायगी ॥ ४३ ॥

मणिःशाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतो मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ॥ कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना ॥ तनिम्ना शोभंते गलितविभवाश्चार्थिषुजनाः ॥ ४४ ॥

टीका—खुरसानमे घसाहुवा मणि, शस्त्रके प्रहार-युक्त संग्राममें जीतनेवाला मनुष्य, मदक्षीण हुवा हस्ति-शरदऋतुमें स्वल्पवहनेवाली नदी, कलाशेष द्वितीयाको चंद्र, कामदेवयुक्त बालास्त्री और याचक जनोंकों धन देनेवाला जन ये सब (तनिम्ना) दुर्ब्बल हैं तथापि शोभते हैं ॥ ४४ ॥

परिक्षीणः कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये स पश्चात्संपूर्णो कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥ अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयार्थेषु धनिनामवस्था वस्तूनि प्रथयति च संकोचयति च ॥ ४५ ॥

टीका—कोइसमे धनसें क्षीणहुवा पुरुष जवोके तुसकीभि वांछा करते हैं और पीछेसें धनसें पूर्ण होजाय तब पृथ्वीकों तृणसमान गिणते हैं इसकारणसें

धनवान् पुरुषोंकि एक स्थिति नहि यह चंचल अवस्थाही मनुष्यकों गुरु लघु कर्ती है और वस्तूकोंभि फैलादेती है पुनः संकुचितपण कर देती है ॥ ४५ ॥

राजन्दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ॥
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः४६

टीका—हेराजन् जो तुम इस पृथ्वीरूप गौको दुहा चाहते हो तो तिन कारणसे वत्सरूप इसलोकका पोषण करो तिस प्रजालोगके पोषण करनेसें यह पृथ्वी कल्पलताकी माफक अनेक प्रकारके फलदेगी४६

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ॥
नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ ४७ ॥

टीका—कहीं सत्य कहीं असत्य कहीं कठोर कहीं प्रियभाषिणी कहीं हिंसाकरनेवाली कहीं दयाकरनेवाली कहीं लोभयुक्त कहीं उदार कहीं नित्य द्रव्यके व्ययकरनेवाली कहीं द्रव्यके बहुत संचयकरनेवाली ऐसी यह राजनीति वेश्याकी माफक अनेक प्रकारकी है ४७

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणं च ॥ येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥ ४८ ॥

टीका—विद्या कीर्त्ति ब्राह्मणोंकी पालना दान भोग मित्रकी रक्षा यह छः गुण जिसमे नही आये तो राजाकी सेवाकरनेसें क्या प्रयोजन ॥ ४८ ॥

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनं तत्प्राप्नोति मरुस्थलेपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ॥ तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा माकृथाः कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥ ४९ ॥

टीका—जो विधाताने थोडा अथवा घणा धन ललाटमे लिखा है उतनाहि मरुस्थलदेशमे मिलता है अरु उनसे अधिक मेरुगिर पर्वतपरभिनाहि मिले तिसकारणसें धीरज रखना और धनवान् पुरुषोंसे ईर्षा मतकर क्यौंकि घट कूपपे अथवा समुद्रपे समान जलकों ग्रहणकर्ता है ॥ ४९ ॥

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न

गोचरः ॥ किमम्भोदवरास्माकंकार्प
ण्योक्तिः प्रतीक्ष्यते ॥ ५० ॥

टीका—हे श्रेष्ठ मेघ तुम (चातक) पपीहाके आधारभूतहो ऐसा सर्वत्र प्रसिद्ध है अब तुम हमारी दीनताको क्या देखतेहो ॥ ५० ॥

रेरेचातक सावधानमनसा मित्रक्षणं
श्रूयतामम्भोदा बहवो वसन्ति गगने
सर्वेपि नैतादृशाः ॥ केचिद्वृष्टिभिरार्द्रय
न्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा यं यं
पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दी
नं वचः ॥ ५१ ॥

टीका—अरे चातक सावधान मनसे क्षणमात्र हमारे वचन सुन आकाशमें मेघ बहुतसे हैं परंतु सब ऐसे नहीं कितनेक तो वर्षाकर पृथ्वीकों पूर्णकर देते हैं और कितने वृथाही गर्जनाकर्त्ते हैं इसलिये जिस जिसकों तूं देखै उसीके आगे दीनताके बचन मत कह

॥ अथ दुर्जन निंदा ॥

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयो
षिति च स्पृहा ॥ सुजनबन्धुजनेष्वसहि
ष्णुनाप्रकृतिसिद्धमिदंहि दुरात्मनाम्५२

T

टीका–किसीकी करुणा नहि करना और बिगर प्रयोजन कलह करना और परधन अरु परस्त्रीकी इच्छा रखना और अपने कुटुंब अरु मित्रजनोंका ऐश्वर्यको सहन नाहि करना यह इतनीबातें दुष्टजनोंके स्वाभाविक सिद्ध हैं ॥ ५२ ॥

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन् ॥
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५३ ॥

टीका–(दुर्जनः) दुष्ट पुरुष जो विद्यावान्‌हि है तथापि त्यागने योग्य है जैसें मणिसें भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता है ॥ ५३ ॥

जाड्यं ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥ ५४ ॥

टीका–गुणवान् पुरुषोंका ऐसाकौनसा गुण है जिसकों दुर्जन पुरुषोंने कलंकित नहि किया जोलज्जावान् पुरुष है उसें मूर्ख कहैं और अच्छे व्रतधारै उन

कों दंभ कहैं और पवित्राई राखे जिसकों कपटी कहैं और शूर पुरुषकों निर्दयी कहैं और मौनीको निर्बुद्धि कहैं और प्रियभाषीकों दरिद्री कहैं और तेजस्वी कों अभिमानी कहैं और वक्ताकों वाचाल कहैं और स्थिरपुरुषकों (अशक्त) हीमतहार कहै ॥ ५४ ॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति
किं पातकैः सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि
मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥ सौजन्यं
यदि किं गुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं
मंडनैः सद्विद्या यदि किं जनैरपयशो
यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ ५५ ॥

टीका—जो किसीमे लोभ है तो फिर अवगुण क्या अरु कुटिलता है तो पातकसें क्या और सत्य वक्ता है उस्सें तपस्यासें क्या और मनशुद्ध है उस कों तीर्थकरनेसें क्या जो सज्जन हैं उन्है मित्र और कुटुंबकी क्या कमी, और जसवान्को आभूषणसें क्या और सच्ची विद्यावंतकों धनसें क्या और जिसके अपयश है उससै अधिक मृत्यु कौन ॥ ५५ ॥

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामि
नी सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वा

कृतेः ॥ प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः
सज्जनो ॥ नृपाङ्गणगतः खलो मनसि
सप्त शल्यानि मे ॥ ५६ ॥

टीका–दिनका मलिन चंद्रमा, यौवनहीन स्त्री, कमल विना सरोवर, सुंदर रूपवंत मूर्ख, धनवंत कृपण सज्जनपुरुष दरिद्री और राजसभामें (खल) दुष्ट यह सातों हमारे ह्वदयमे शल्यरूप हैं ॥ ५६ ॥

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भू
भुजाम् ॥ होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो द
हति पावकः ॥ ५७ ॥

टीका–अति क्रोधी राजोंका कोई (आत्मीयः) मित्र नही जैसे अग्नी स्पर्श किया हुवा होमकरनेवालेकोंभि दहन करदेता है ॥५७॥

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको
वा ॥ धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरत
श्चाप्रगल्भः ॥ क्षान्त्या भीरुर्यदि न सह
ते प्रायशो नाभिजातः ॥ सेवाधर्मःपर
मगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥ ५८ ॥

टीका–जो कोई सेवक मौन राखे उसकों गूंगा कहै और बोलनेमै चतुर होय उसें वाचाल अरु ब-

कवादी कहै नजीक रहेनेसें धीठ कहै दूररहनेसें मूर्ख कहै क्षमारखनेसें (भीरु) डरकण कहैं और अन्यकी वार्त्ता नहिसहनेसें कुलहीन कहै ऐसें सेवाधर्म परम कठिन योगिजनोकेभि अगम्य है ॥ ५८ ॥

उद्भासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य
प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ॥
दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोस्य
नीचस्य गोचरगतैः सुखमास्यते कैः५९

टीका—नीच पुरुषके पास रहनेसें कौन सुख पाता है वो नीच कैसा है अनेक दुष्टनकूं प्रगट करनेवाला है और पूर्वजन्मकीकरी हुई विस्तृत है अधर्मवृत्ति जिनके फिर दैवयोगसे धनभि मिला है अरु गुणीपुरुषनसें द्वेष करै ऐसा है ॥ ५९ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ॥
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ६० ॥

टीका—आरंभमें लंबी पीछे अनुक्रमसें शनैःशनैः कमतीहोजाय मध्याह्न पूर्वकी छायाके समान दुष्टनकी मित्राई है अरु प्रथम स्वल्प पीछे अनुक्रमसें वधे

ऐसी मध्याह्न पिछली छायाकी माफक सज्जनोकी मित्राई है ॥ ६० ॥

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहि
तवृत्तीनाम् ॥ लुब्धकधीवरपिशुना
निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१ ॥

टीका—मृग मीन और सज्जन यह तीनों तृण जल और संतोषकरके अपनी जीविका करते हैं उस्सें व्याध धीवर और कुटिललोग बिगर प्रयोजन वैर रखते हैं.

॥ इति दुर्जन निंदा ॥

अथ सुजन प्रशंसा ॥

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ
नम्रता विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति
रतिर्लोकापवादाद्भयम् ॥ भक्तिःशूलि
निशक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिःखले
ष्वेतेयेषुवसंतिनिर्मलगुणास्तेभ्यो
नरेभ्योनमः ॥ ६२ ॥

टीका—सज्जनोंके संगकी वांछा पराये गुणमें प्रीति बडे लोगोंसें नम्रता विद्यामें व्यसन. अपनीहि स्त्रीसें रति लोकनिंदासें भय महेश्वरमें भक्ति आत्माके दमनमें शक्ति और खलके संगका त्याग यह

निर्मलगुण जिसमे हैं तिनकों मेरा नमस्कार है॥६२॥

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा ॥
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ॥
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ ॥
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

टीका—विपत्तिमें धैर्य ऐश्वर्यमे क्षमा सभाके बीचमें बोलनेकी चतुराई संग्राममें पराक्रम यशमें रुचि शास्त्राभ्यासमें व्यसन यह इतनी वार्त्ता महात्मा पुरुषोंके स्वाभाकिक सिद्ध हैं ॥ ६३ ॥

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमवि
धिः प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चा
प्युपकृतेः ॥ अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभि
भवसाराः परकथाः सतां केनोद्दिष्टं वि
षममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ६४ ॥

टीका—दान देवैं वो प्रछन्न रखें घरकों आवै जिसका आदर करैं किसीका भला करकें कहै नहीं और दूसरा कोई उपकार करे वो सभाके बीचमें कहै और लक्ष्मी आये अभिमानरहित और पराई वार्त्ताकों अच्छी तरे कहना यह असिधारावत् कठिनव्रत सत्पुरुषोंकों किसने उपदेशकरा किंतु स्वाभाविक गुण है॥६४

T

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता मुखे सत्या वाणी विजयिभुजयोर्वीर्यमतुलम् ॥ हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मंडनमिदम् ॥ ६५ ॥

टीका–हाथसें अच्छादान मस्तकसें बडेलोगोंके पैरपडना मुखसें सत्य बोलना दोनों भुजामें अतुल पराक्रम हृदयमें स्वच्छता और कानसे शास्त्रश्रवण यह ऐश्वर्यविनाभि महत्पुरुषोंके स्वाभावीक मंडन हैं

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ॥ आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ॥ ६६ ॥

टीका–संपत्तिमें महात्मा पुरुषोंका चित्त कमलसें भि कोमल रहता है और आपत्तिमे पर्ब्बतकी बडी शिलाकी तुल्य कठिनहोता है ॥ ६६ ॥

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ॥ स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते प्रायेणाध

ममध्यमोत्तमगुणाःसंसर्गतो देहिनाम् ॥

टीका—एकही जल संसर्गसें अनेक गुण युक्तहोता है तपेहुवे लोहपर स्थित जलका तो नामभि नहि रहता है और वही जल कमलनिके पत्रपर रहा हुवा मोतीके आकार दीखता है और स्वातिनक्षत्रमे समुद्रके बीच सीपमे पडा हुवा वही जल मुक्ताफल होजाता है ऐसें पुरुषोंके प्रायः करके अधम मध्यम उत्तमगुण संसर्गसे होता है ॥ ६७ ॥

यःप्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ॥
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य
देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ६८

टीका—जो अच्छे चरित्रनसें पिताकों प्रसन्नकरै वोही पुत्र और भर्त्तारका हित वंछे वाही स्त्री और आपदा अरु संपदामें समान रहै वोहि मित्र यह तीनों जगत्में पुन्यवान् पुरुषको मिलते हैं ॥ ६८ ॥

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ॥
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६९॥

टीका—एक देव केशव अथवा शिव और एकही मित्र राजा अथवा यति और एकही जगा वसना चाहियै नगर अथवा वनमें और एकही सुंदर स्त्री अथवा पर्वतकी गुफा ॥ ६९ ॥

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्
गुणान् ख्यापयन्तः स्वार्थान् सम्पाद
यन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाःपरार्थे॥
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्ज
नान् दूषयन्तःसन्तःसाश्चर्यचर्या जग
ति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः॥७०॥

टीका—नम्रतासें ऊंचे मान्यहोते हैं और परगुण कहनेसें आपके गुण प्रसिद्ध करते हैं और सविस्तर पराएकार्यकरनेसें अपने कार्य संपादनकर्त्ते हैं और निंदक पुरुषोंको आप क्षमारखनेसें दूषितकर देते हैं ऐसे आश्चर्यवाले बहुमान्य संत किसके पूजनीक नहि हैं

॥ इति सुजन प्रशंसा ॥

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्भूरि विलम्बिनो घनाः ॥
अनुद्धतः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ७१

टीका–जैसे फलके लगनेसें वृक्ष नम्रहोते हैं और नवीन जलसें मेघ झुकजाते हैं और समृद्धिकरके सत्पुरुष नम्र होके चलते हैं यह परोपकारी पुरुषोंका स्वभावही है ॥ ७१ ॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन
पाणिर्न तु कङ्कणेन ॥ विभाति कायः
करुणापराणां परोपकारैर्नतु चंदनेन

टीका–करुणापरायण सत्पुरुषोंका कान शास्त्र श्रवणसे शोभित होते हैं कुंडलसें शोभित नहि होते और (पाणि) हस्त दान देनेसे शोभते हैं कंकणसे नहि और शरीर परोपकारकरनेसे शोभता है चंदनसें नहि ॥ ७२ ॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ७३

टीका–मित्रकों पापसें निवारणकरै अरु हितका उपदेशकरै और गुप्तवार्त्ताकों छिपाकेरखै और गुणोंका प्रकाशकरै और आपदामेंभि त्याग न करै फिर समय-पर द्रव्यदेवै ऐसा सन्मित्रोंका लक्षण संतोंने कहा है ७३

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति
चन्द्रो विकाशयति कैरवचक्रवालम्॥
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहिते सुकृताभियोगाः७४

टीका–(दिनकर) सूर्य कमलकों विकसित करता है और चंद्रमा कुमुदनीकों प्रफुल्लित कर्त्ता है और मेघ विना याचे जल वर्षाता है ऐसें संत महात्मा पुरुषभि विना याचे परोपकार कर्त्ते हैं ॥ ७४ ॥

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं
परित्यज्य ये॥ सामान्यास्तु परार्थमु-
द्यमभृतःस्वार्थाविरोधेन ये॥ तेऽमी
मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय नि-
घ्नन्ति ये॥ये निघ्नंति निरर्थकं परहितं
ते के न जानीमहे ॥ ७५ ॥

टीका–जेस्वार्थकों त्यागके परके अर्थकों सिद्धकर्त्ते हैं वह सत्पुरुष कहलाते हैं और स्वार्थकों सिद्धकरकैं पीछे परार्थकों करैं वह (सामान्य) मध्यम कहलाते हैं और स्वार्थके निमित्त परहितकों विगाडदेते हैं वह मनुष्योंमे राक्षसतुल्य कनिष्ट कहलाते हैं परंतु तिरर्थक परहितकों विगाडदेते हैं उसके क्या

लक्षण हैं वो हम नहि जानतें ॥ ७५ ॥

क्षीरेणात्मगतोदकाय हिगुणा दत्ताः
पुरा तेऽखिलाः ॥ क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन
पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ॥ गन्तुं
पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं ॥
युक्तं तेन जलेनशाम्यति सतां
मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६ ॥

टीका—दूधमें जलमिला तब दूधने आपके सबगुण उसजलकों देदिया तब जलने दूधमें तापदेखकें आपकी आत्माकों अग्नीमें होमदीया तब दूधनें अपने मित्र जलमें आपदाकों देखकें अग्नीमें जानेलगा तब फिर जलसें छांटनेसे दूध शांतिहो जाता है यह बात युक्त है क्योंकि सत्पुरुषोंकि मित्राई ऐसी होती है७६

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषामितश्च शरणार्थिनः शिखरिणां गणाः शेरते ॥ इतोऽपि वडवानलः सह समस्तसंवर्तकैरहो विततमूर्जितं भरसहंच सिन्धोर्वपुः ॥७७॥

टीका—समुद्रकी एकतरफ़ विष्णु सोते हैं और एकतरफ विष्णुके शत्रु राक्षसनका कुल रहता है

और एकतरफ़ शरणार्थी पर्वतनका समूह पडा है और एकतरफ वडवानल अग्नी रहता है अहो इत्याश्चर्ये ऐसे विलक्षणरूप भारसहनेवाला समुद्रका शरीर है७७

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं
पापे रतिं मा कृथाः सत्यं ब्रूह्यनुयाहि
साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ॥ मा-
न्यान्मानय विद्विषोप्यनुनय प्रख्या-
पयस्वान्गुणान्कीर्तिं पायल दुःखिते
कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥ ७८ ॥

टीका—तृष्णाका छेदनकरो क्षमाका सेवनकरो मदका त्यागकरो पापसे प्रीति मतकरो सत्यबोलो साधु जनोंकी मर्यादामे चलो पंडितोंका सेवनकरो मान्य पुरुषोंका मान रखो शत्रुओंकोभि प्रसन्नरखो अपने गुणकों प्रसिद्धकरो अपनी कीर्त्तिका पालनकरो और दुःखीजनोंपर दया रखो यही सत्पुरुषनका लक्षण है७८.

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणय-
न्तः ॥ परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य
नित्यम् निजहृदि विकसंतः सन्ति
सन्तः कियन्तः ॥ ७९ ॥

टीका–मन वचन कायाके बीचमें पुण्यरूप अमृतसें भरे हैं और त्रिभुवनकों अनेक उपकारनसे तृप्त करनेवाले और परमाणुतुल्य पराये गुणकों पर्बतसा वढाके अपने हृदयमें प्रसन्न होनेवाले ऐसे कोई बिरलेही संत हैं ॥ ७९ ॥

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ॥
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाःस्युः॥ ८०

टीका–हेमगिरि मेरु और रजताद्रि हिमाचल इनसें क्या क्यौंकि जिसके आश्रित वृक्ष हैं वह वृक्षही रहते हैं हमतो मलयाचलकोंही उत्तम मानते हैं क्यौंकि जिनके आश्रयसें कंकोल निंब कुटजादिक वृक्ष सब चंदन हो जाते हैं ॥ ८० ॥

॥ अथ धैर्यप्रशंसा ॥

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे
भीमविषेण भीतिम् ॥ सुधां विना न प्र-
ययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः

टीका–अमूल्य रत्न पायके और भयानक विषसें भयभीत होकेंभि देवताओने अपना उद्योग न-

हिछोडा विना अमृत निकाले विश्राम नहि लिया. ऐसें धीरपुरुषभि निश्चित अर्थकों बिगर सिद्ध कीये छोडकें नहि बैठते हैं ॥ ८१ ॥

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ॥ क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ८२ ॥

टीका—कचित् भूमीपर सो रहे हैं कचित् अछे पिलंगपर शयनकरते कबि साक खाके रह जाते कचि अछे चावलादिकनका भोजन कर्तें कबि गूदडी ओढके रहते कबि दिव्य वस्त्र धारण कर्तें हैं मनस्वी और कार्यार्थी पुरुष सुख दुःख दोनोंकों नहि गिनते ८२

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ॥ अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥ ८३ ॥

T

टीका—ऐश्वर्यका भूषण सज्जनता और शूरताका भूषण वचनविचारके बोलना और ज्ञानका भूषण शांति और शास्त्रपठनका विनय और धनका भूषण सुपात्रकों दान देना और तपस्याका भूषण क्रोध न करना और प्रभुताका भूषण क्षमा और धर्मका भूषण निश्चलता ऐसें सब गुणोंका भूषण शील है ॥ ८३ ॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥ अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ८४ ॥

टीका—नीतिशास्त्रकों जाणनेवाले निंदाकरो चाहै स्तुतिकरो और वहुतसी लक्ष्मी घरमें आवो अथवा जावो और प्राण अबिजाउ अथवा कल्पांतमें जाय तथापि धीरपुरुष न्यायका मार्ग छोडके एक पगभि बाहिर नहि चलते ॥ ८४ ॥

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा कृत्वाखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ॥ तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव या-

तः पथा लोकाः पश्यत दैवमेव हि नृ-
णां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८५ ॥

टीका–ऐसा सर्प जिसें जीवनाकि आशा नहि और पिटारेमें रहनेसें शरीर पीडितहै और क्षुधासे उसकी सब इंद्रियां शिथिल होरही हैं उसमें रातकों १ मूषक उसपिटारेके छेदन करके आपही उस सर्पके मुखमें गिरा तब वह सर्प उस मूसेके मांससे तृप्त होके उसी छेदके रस्ते निकला हे लोको तुम देखोकि ऐसेंहि मनुष्योंको क्षय और वृद्धिमें कारण दैवही है ॥८५॥

पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव क-
न्दुकः ॥ प्रायेण साधुवृत्तानामस्था-
यिन्यो विपत्तयः ॥ ८६ ॥

टीका–हाथोंकी ताडनासें गिरागयाभि गैंद ऊपरकोंहि उछलताहै ऐसें प्रायः साधु आचरणवालोंकि विपत्ति स्थिर नहि ॥ ८६ ॥

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो
महान् रिपुः ॥ नास्त्युद्यमसमो बन्धु-
र्यं कृत्वा नावसीदति ॥ ८७ ॥

टीका–आलस्य मनुष्योंके शरीरमें रहाहुवा महान् शत्रू है और उद्योग समान कोई बंधु नही जि-

सके करनेसे दुःख नहि आता ॥ ८७ ॥

छिन्नोऽपि रोहति तरुःक्षिणोप्युपची-
यते पुनश्चन्द्रः ॥ इति विमृशंतः स-
न्तः संतप्यन्ते न विप्लुता लोके॥ ८८ ॥

टीका—छेदनकियाहुवाभि वृक्ष फिर वृद्धिपायके फेल जाता है और चंद्रमा क्षीण होकर फिर पूर्णहो जाताहै ऐसे विचारकरकै संत विपत्तिसें संतापकों प्राप्त नहि होते ॥ ८८ ॥

॥ अथ दैवप्रशंसा ॥

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सु-
राः सैनिकाः स्वर्गो दुर्गमनिग्रहः कि-
ल हरेरैरावतो वारणः ॥ इत्यैश्वर्यब-
लान्वितोऽपि बलिभिर्भग्नः परैः संगरे
तद्व्यक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृ-
थापौरुषम् ॥ ८९ ॥

टीका—जिसके बृहस्पति मंत्री,शस्त्र वज्र, देवताओंकी सेना, स्वर्गगठ, चठनेकों ऐरावतहस्ती, फिर विष्णुका पूर्ण अनुग्रह ऐसा ऐश्वर्य रहते शत्रुओंसे हताहै हिरहा तो यह प्रगट है कि इसमे दैवही मुख्य कारण पुरुषार्थ वृथा है उसकों धिक्कार हो ॥ ८९ ॥

कर्मायत्तं फलं पुसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥
तथापि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥ ९० ॥

टीका–पुरुषोंको फल कर्माधीन है और बुद्धिभि कर्मके आधीन है तथापि पंडितोंको विचारहीके काम करना चाहिये ॥ ९० ॥

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलंगतः ॥
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ॥ ९१ ॥

टीका–(खल्वाट) गंजापुरुष सूर्यकि किरणसें मस्तकपर जलने लगा तब वह छायाकि वांछा कर्त्ता हुवा दैववशसें तालवृक्षके नीचे जाके खडा हुवा तहां जातेही शीघ्र ऊपरसें बडाफल गिरा उस्सें शिर फूटा अरु शब्द हुवा तो देखो भाग्यहीन जहां जातें हैं वहांही आपदा संग जाती है ॥ ९१ ॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ॥ मतिमतां च

विलोक्य दरिद्रतां विधिरहो बलवानिति मे मतिः ॥ ९२ ॥

टीका–सूर्य अरु चंद्रमाका राहुसें पीडन और हस्ति अरु सर्पका बंधन होना और बुद्धिमान् पंडितोंके दारिद्रपणौ यह देखते मेरी वुद्धिमें ऐसा आता हैकि विधाताहि बलवान् है ॥ ९२ ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ॥ तदपितत्क्षणभङ्गुकरोतिचेदहह कष्टमपण्डितताविधेः ९३

टीका–विधाताने प्रथम सब गुणनकि खान अरु पृथ्वीके अलंकार भूत ऐसे पुरुषरत्नको पैदाकरा पीछे क्षणमात्रसें उसकी देह क्षणभंगुर करी यह बडी कष्ट वार्त्ता है इनसें विधाताकि मूर्खता दीखपडती है ९३

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ॥ धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कःक्षमः ॥ ९४ ॥

टीका–जो करीर वृक्षके पत्तेनहिलागते तो वसंत

ऋतुका क्या दोष और (उलूक) घूघूपक्षी दिनमें नहिदेखे तो सूर्यका क्या दूषण और (चातक) पिपीयाके मुखमें जलकी धारा नहि पडे तो मेघका क्यादूषण इस्सें ऐसा निश्चय होता है कि जो विधाताने प्रथम ललाटमें लिखा है उसको मिटानेकों कोई समर्थ नहि९४

॥ अथ कर्मप्रशंसा ॥

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगा विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ॥ फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किंच विधिना नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥९५॥

टीका—हम इंद्रादिक देवतानकों नमस्कारकर्ते हैं परंतु वहदेवता विधिके वशहैं इस्सें विधिकों नमस्कारहै और विधाताभि पूर्वकृत कर्मनके अनुसार फलदेताहै जो फल कर्मके आधीन है तो देवता और विधिसें क्या प्रयोजन इस्सें कर्मकोंही नमस्कार है क्यों कि विधाताकाभि कर्मपर सामर्थ्य नहि चलता ॥ ९५

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ॥ रुद्रो येन

कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै
नमःकर्मणे ॥ ९६ ॥

टीका–जिस कर्मनें ब्रह्माकों ब्रह्मांडरचनेमें कुंभकारकिपरे लगाया और विष्णुकों दशावतार ग्रहणरूप बडे संकटमें डाला और शिवकों हाथमें कपाल लेके भिक्षामांगनेमें रखा और सूर्यकों नित्य आकाशमें भ्रमाया है ऐंसे कर्मको मेरा नमस्कार है ॥ ९६ ॥

नैवाकृतिःफलति नैव कुलं न शीलं
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ९७

टीका–पुरुषकी सुंदर आकृति नहि फलती है और उत्तम कुल शील विद्या और बडे यत्नसें कीहुई राजादिकनकी सेवा यह कोईभि फल नहि देता केवल पूर्वतपस्यासें संचितहुवे भाग्यही समयआयेसें फलते हैं जैसें वृक्ष समय आये फलता है तैसें ॥ ९७ ॥

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे
पर्वतमस्तके वा॥ सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं
वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि९८

टीका–वनमें रणमें और शत्रु जल अग्नीके मध्यमें और समुद्रमें अथवा पर्वतके मस्तकपर फिर सूतेकी अथवा मदोन्मत्तकी वा विषम जगे रहे हुवेकी इतनी जगे पूर्वकृत पुण्यही रक्षा कर्त्ते हैं॥९८॥

या साधूंश्च खलान्करोखि विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात्॥
तामाराधय सत्क्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितम् हेसाधो व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा मा कृथाः ॥ ९९ ॥

टीका–जो अछी क्रिया (खल) दुष्टनकों साधूकरै और मूर्खनकों पंडित करै और शत्रुकों मित्रकरै और परोक्षकों प्रत्यक्ष करै और (हालाहल) विषकों अमृतकरै ऐसी सत्क्रियारूप भगवतीकी आराधना करो अहो साधो महत्मापुरुषो जो वांछित फल भोगनेकी इच्छा करोहो तो बहुतसे गुणोंके साधनमै वृथा श्रम मत करो ॥ ९९ ॥

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ॥
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भव-

T

त्ति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः १००

टीका—कोई कार्य युक्त हो अथवा अयुक्तहो परंतु करनेवाले पंडितकों उसका परिणाम पहिलेसें विचारलिया चाहियै विनाविचारे अतिशीघ्रतासें काम कियेका फल मरणपर्यंत हृदयके दाह तुल्य कंटकके समान होता है ॥ १०० ॥

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं
चंदनैरिंधनौघैः सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति
वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ॥ छित्वा
कर्पूरखंडान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां
समंतात्प्राप्येमां कर्मभूमिं न
चरति मनुजो यस्तपो मंदभाग्यः १०१॥

टीका—कोई मनुष्य वैडूर्य रत्नके बर्तनमें लशुनकों चंदनके काष्ठसें पचाते हैं और आकडेकि जडकेलियें सुवर्णके हलसें पृथ्वीकों भेदते हैं और कर्पूरके खंडकों छेदनकरकैं कोद्रवके चोतरफ वाडकरते हैं वो मंदभागीहैं ऐसेंहि इस कर्मभूमिमें मनुष्यजन्मकों पायके जो तपस्या नहि कर्चे हैं वो मंदभागीहैं ॥ १०१ ॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिस-

कला विद्याः कलाः शिक्षतु ॥ आका-
शं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं
परं नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो
भाव्यस्य नाशः कुतः ॥ १०२ ॥

टीका—कोईपुरुष चाहे समुद्रमें डूबो चाहै मेरुके शिरपर चढो चाहैं घोरसंग्राममें शत्रुओंको जीतो चाहै विणज खेती सेवा आदि विद्याकी अनेककला सीखो और आकाशमें पक्षीकीपरे बडेयत्नसें फिरो परंतु कर्मके वशसें अनहोनी नहिहोती और होनी है सो नहि टलती ॥ १०२ ॥

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं स-
र्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ॥
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य १०३

टीका—जिस मनुष्यके बहुतसा पूर्वकृत पुण्य है तिनके भयानक वन श्रेष्ठपुर समान हो जाता है और सबजन उसके मित्र होजाते हैं और संपूर्ण पृथ्वी रत्नोंसें पूर्ण हो जाती है ॥ १०३ ॥

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्रा
ज्ञेतरैः सङ्गतिः का हानिः समयच्युति

निपुणता का धर्मतत्वे रतिः ॥ कः शू-
रो विजितेन्द्रियः प्रियतमा कानुव्रता
किं धनं विद्या किं सुखमप्रवासगमनं
राज्यं किमाज्ञाफलं ॥ १०४ ॥

टीका–जगत्में लाभ कौन गुणवान् पुरुषोंकी संगत, दुःख क्या मूर्खनकि संगत, हानि क्या अवसरपर चूकना, (निपुणता) जाणपणाक्या धर्मके तत्वमें रति, शूर कौन जिसने इंद्रियां वशकरीं, स्त्री कौन आज्ञामें चले वो, धन क्या विद्या, सुख क्या प्रदेशनहि जाना, राज्य क्या सब रैयत आज्ञामें चलै ॥ १०४ ॥

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः
स्वदारपरितुष्टैः॥ परपरिवादनिवृत्तैः
क्वचित्क्वचिन्मंडिता वसुधा ॥ १०५ ॥

टीका–अप्रिय वचन रहित और प्रियवचन सहित और अपनीहि स्त्रीसें संतुष्ट और पराई निंदासें रहित ऐसे पुरुषनसें पृथ्वी कहीं कहीं शोभायमान है अर्थात् ऐसे थोडे हैं ॥ १०५ ॥

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते
धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ॥ अधोमुखस्यापि

कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव

टीका–धीरजवान् पुरुष कष्टप्राप्त है तथापि उनकी धीरजका गुण मिटानेकों कोइ समर्थ नहि जैसें अग्नीका मुख नीचा करा तथापि अग्नीकी शिखा कदापि तो नीचे नहीं जाती ॥ १०६ ॥

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः १०७

टीका–स्त्रियोंके नेत्ररूपी बाण जिनके चित्तकों नहि वींधते और क्रोधरूप अग्नीका ताप जिनकों बाले नहि और पंचेंद्रियके विषय लोभरूप पापींसें जिसके चित्तकों खेंचे नहि ऐसे वह धीर पुरुष त्रिलोकीकों जीतताहै ॥ १०७ ॥

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ॥
क्रियते भास्करेणेव परिस्फुरिततेजसा ॥ १०८ ॥

टीका–एकहि शूरवीर पुरुषने सब पृथ्वीकों पगके नीचे दबालइहै जैसें अकेला सूर्य आपके तेजसें जगत्कों प्रकाशित करै तैसें ॥ १०८ ॥

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणान्मेरुःस्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते यस्यास्तेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ॥ १०९ ॥

टीका—जिसके अंगमें सब जगत्के वल्लभतम अतिप्रिय ऐसा शील प्रकाशमान है उनके आगे अग्नी जलरूप हो जाती है और (जलनिधिः) समुद्र स्वल्प तडाग समान दीख पडता है और मेरु छोटी शिलातुल्य हो जाता है और (मृगपतिः) सिंह हरिण तुल्य हो जाता है और सर्प फूलकी माला बन जाता है और विष अमृत समान हो जाता है ॥ १०९ ॥

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनःप्रतिज्ञाम् ११०

टीका—सत्य बोलनेवाले तेजस्वी पुरुष अपने प्राणकों सुखसें त्याग करदेते हैं परंतु आपकी धारण करी हुई प्रतिज्ञाकों त्याग नहि करते हैं कैसी है वह प्रतिज्ञा

लज्जादिगुणोंके समूहकों उत्पन्न करनेवाली और अपनी माताके समान हृदय और स्वाधीन रहने वाली है ११०

॥ इतिश्री योद्धपुरीय ऋषभदत्तशास्त्रि विरचिता भर्तृहरिकृत नीतिशतकस्य भाषाटीका संपूर्णा ॥१॥

अथ भर्तृहरिविरचितम् ।

शृंगारशतकं प्रारभ्यते

शम्भुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

अथ शृंगारशतककी भाषाटीका बनाते हैं इसकों अच्छी तरह विचारनेसें परिणाममें वैराग्यही उत्पन्न होता है स्त्रियनका शृंगार नश्वर है अरु उनसें उत्पन्न हुवा सुखभि नाशवान् है और परिणाममें दुःखरूप है तथापि विषयी पुरुष बिगर विचारे स्त्रियनकी बहुतसी स्तुति करते हैं सोहि प्रथम लिखते हैं ॥

टीका–शिव ब्रह्मा और विष्णु इन तीनोंकों जिस कामदेवनें स्त्रियनके घरके कामकरनेके लिये निरंतर दासरूप बनारखा और वचनसें अगोचर हैं चित्रवि-

T

चित्र चरित्र जिनके ऐसे पुष्पायुध कामदेव भगवान्कों मेरा नमस्कार है॥ १ ॥

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया
पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ॥ वचो
भिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभा
वैःखलु बन्धनं स्त्रियः ॥ २ ॥

टीका—मंदमंद हसनेसें, लज्जाकरनेसें, भयरखनेसें, मुखफेरके ऊठनेसें, अर्ध कटाक्षके देखनेसें, मधुर वचनके बोलनेसें, ईर्ष्या करनेसें, कलह करनेसें, अनेक चरित्र दिखानेसें इत्यादिक अनेक पदार्थोंसे निश्चे स्त्रियां सबनके बंधनरूप हैं ॥ २ ॥

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः स्निग्धा
वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ॥ लीलामन्दं
प्रस्थितं च स्थितं च स्त्रीणामेतद्भूष-
णं चायुधं च ॥ ३ ॥

टीका—भौंह फेरनेकी चतुराईयुक्त नेत्र और कटाक्ष चलाना और मधुर वचनसें बोलना और लज्जाकरना और हास्य करना और स्वभावसें मंदमंद चलना अरु स्थितरहना यह इतनी वार्त्ता स्त्रियनके आभूषण है और आयुध है ॥ ३ ॥

क्वचित्सुभ्रूभंगैः क्वचिदपि च लज्जा-
परिणतैः क्वचिद्भीतित्रस्तैः क्वचिदपि
च लीलाविलसितैः ॥ नवोढानामे-
भिर्वदनकमलैर्नेत्रचलितैः स्फुरन्नीला
ब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दृशः ॥ ४ ॥

टीका—कोई समय सुंदर भौंहसें कटाक्ष करना कोईसमय लज्जायुक्त होना कभी भयसें भीत होना लीलाका विलास इसरीतके नेत्रोंके कटाक्षकर शोभित नवीन स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंकरके विकसित नीलकमलोंके समूहकी माफक दृष्टि दीखरही है ॥४॥

वक्त्रं चन्द्रविकासि पङ्कजपरीहासक्षमे
लोचने वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनी
जिष्णुःकचानाञ्चयः ॥ वक्षोजाविभकु
म्भसंभ्रमहरौ गुर्वी नितंबस्थली
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वा-
भाविकं मंडनं ॥ ५ ॥

टीका—(वक्त्रं) जिनका मुख चंद्रवत् वर्त्तुल गोल शोभायमान है, कमलकी शोभा मिटानेवाला नेत्र और (वर्णः) देहकी कांति सुवर्णकि शोभाकों हरनेवाली, केशोंके समूह भ्रमरीकी शोभाकों जीतनेवाले,

कुचयुगल हस्तीके कुंभस्थलकी शोभाकों हरनेवाले कठिन हैं ओर विशाल दोनों नितंब और अत्यंत कोमल वचन इतने सब पदार्थ स्त्रियनके स्वाभावीक मंडन हैं ५

स्मितंकिञ्चिद्वक्रे सरलतरलो दृष्टिविभवः
परिष्यंदो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः
॥ गतीनामारम्भः किसलयितलीला
परिकरस्पृशांत्यास्तारुण्यं किमिह न हि
रम्यं मृगदृश ॥ ६ ॥

टीका—तारुण्यपना धारण करनेवाली मृगनयनी स्त्रियनके कौनसा पदार्थ रमणीय नहि अर्थात् सब रमणीय है मुखमें मंद मंद हास्य और सरल चंचल दृष्टिका पात और अभिनव विलासकी उक्तिसें सरस बात करना और नवीन पल्लवकी माफक कोमल मंद मंद चालना ॥ ६ ॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं
मुखं घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः
श्राव्येषु किं तद्वचः ॥ किं स्वादेषु
तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनुर्ध्येयं
किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र
तद्विभ्रमः ॥ ७ ॥

टीका–रसिकोंके देखने योग्य वस्तुमें उत्तम वस्तु क्या है मृगनयनि स्त्रियनके प्रेमयुक्त प्रसन्न मुख, सूंघनेयोग्य वस्तुमें उत्तम क्या स्त्रियनके मुखका पवन, सुननेमें उत्तम क्या स्त्रियनके बचन, स्वादु वस्तुमें उत्तम क्या स्त्रियनके ओष्टपल्लवका रस, सुदृश्यवस्तुमें उत्तम क्या स्त्रियनका शरीर, ध्यान करने योग्य क्या स्त्रियनका नवीन यौवन और विभ्रम विलास ॥ ७ ॥

एताः स्खलद्वलयसंहतिमेखलोत्थझ
ङ्कारनूपुररवाहृतराजहंसस्यः॥कुर्वन्ति
कस्य न मनो विवशं तरुण्यो वित्र
स्तमुग्धहरिणीसदृशैः कटाक्षैः ॥ ८ ॥

टीका–शब्दायमान (वलय) कंकणके समूह अरु कटिमेखलासें उत्पन्न भया झणत्कार ऐसे नूपुरके शब्दसें जीतलिये हैं राज हंसोंकों जिसनें ऐसी स्त्रियां भयभीत मुग्ध हरिणीके सदृश कटाक्षसें किसके मनकों विवश नहि करती हैं अर्थात् सबनको कर्ती हैं८

कुंकुमपङ्कलङ्कितदेहा गौरपयोधरक-
म्पितहारा ॥ नूपुरहंसरणत्पदपद्मा
कं न वशीकुरुते भुवि रामा ॥ ९ ॥

टीका–कुंकुमके कर्दमसें युक्त है देह जिनोंका

और गौर पयोधरसें कंपित है हार और नूपुर रूपी हंसोंसे शब्दायमान पदकमल जिनोंका ऐसी स्त्रियां पृथ्वीपर कौनसे पुरुषकों वश नहि कर्त्ती ॥ ९ ॥

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा ये
नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम्॥
याभिर्विलोलतरतारकदृष्टिपातैः शक्रा-
दयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः १०

टीका—देखो निश्चयकरके यह कवीश्वर उलटी समजवाले हैं क्योंकि स्त्रियनकों वे सदाकाल अबला ऐसे कहते हैं परंतु वे स्त्रियां अति चपल कनीनिका सहित ऐसे दृष्टिपातसें इंद्रादिक देवतानकों जीतलिये हैं तब वह अबला कैसें ॥ १० ॥

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्रुवो मकरध्वजः
यतस्तन्नेत्रसंचारसूचितेषु प्रवर्तते ११

टीका—निश्चयकर तिन अच्छे भौंहयुक्त स्त्रियनका कामदेव आज्ञाकारीहै क्योंकि जिसे वह नेत्रोंसे सेनकर देती है उसें यह वश करलेता है ॥ ११ ॥

केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते
लोचने अन्तर्वक्रमपि स्वभावशुचि-
भिः कीर्णं द्विजानां गणैः ॥ मुक्तानां

सतताधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वय-
मित्थं तन्वि वपुः प्रशांतमपि ते क्षो-
भं करोत्येव नः ॥ १२ ॥

टीका–जिनके केश संवारे हुवे हैं और नेत्र कानोंसे पारगएहैं अर्थात् विशालनेत्र हैं और स्वभावसें पवित्र उज्वल ऐसे दंतपंक्तिसें मुख अंदरसें भरा है और मुक्ताफलके हार वहां निरंतर रहनेसें शोभित है कुचकलश जिनके हे स्त्री ऐसा तेरा सुंदर शरीर मेरे मनकों क्षोभकरता है ॥ १२ ॥

मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि
दृश्यते ॥ यथा हरसि चेतांसि गुणैरेव
न सायकैः ॥ १३ ॥

टीका–हेमुग्धे यह अपूर्वी धनुषविद्यामें कुशलता तेरेमें दीखती है सो कहांसे आई क्योंकि बाणाबिगर केवल(गुण) पनचहीसें चित्तकों हरती है ॥ १३ ॥

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवी-
न्दुषु ॥ विना मे मृगशावाक्ष्या तमो-
भूतमिदं जगत् ॥ १४ ॥

टीका–दीपकछते अग्निछते और तारा रवि चंद्रछतेहिं मेरे तो मृगनयनी स्त्री बिगर सब जग अंधेरा है

T

यद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले
भ्रूलते रागान्धेषु तदोष्ठपल्लवमिदं
कुर्वन्तु नाम व्यथाम् ॥ सौभाग्याक्षर-
पङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं
मध्यस्थापि करोति तापमधिकं रोमा-
वली केन सा ॥ १५ ॥

टीका—हेकामिनि जिसकारणसें तुमारा यह वर्त्तुल स्तनभार और चंचल नेत्र और चंचल भ्रूलता और ओष्ठपल्लव इतने सब रागकरके अंध रसिक हम हैं तिनके व्यथा कर्त्ते हैं तो करो क्यौंकि तेरे ललाटमैं सौभाग्यके अक्षरकि पंक्ति कामदेवनें हाथसैं लिखी है इस्सैं मेरा कछु चलता नहि परंतु यह तेरे उदरके मध्य रोमावलि ओ ताप अधिक कर्त्ती है इसका क्या कारण ॥ १५ ॥

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भा-
स्वता ॥ शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे
ग्रहमयीव सा ॥ १६ ॥

टीका—गुरु स्तनोंके भारसे मुखरूपी चंद्र भास्वान्सें और मंदगामी चरणोंसे वह स्त्री ग्रहमयी दीखती है ॥ १६ ॥

T

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि
वक्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम् ॥ पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा पुण्यैर्विना न हि भवन्ति
समीहितार्थाः ॥ १७ ॥

टीका–हे चित्त तिन स्त्रीके स्तन (घन) कठिन हैं और जघन क्रीडा योग्य हैं और मुख सुंदर है उनकों देखकैं आकुल व्याकुल क्यों होता है जो तिनमों तेरी वांछा होय तो पुण्य कर क्योंकि पुण्य बिगर मनोरथ सिद्ध नही होते हैं ॥ १७ ॥

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्यमार्याः
समर्यादमिदं वदन्तु ॥ सेव्या नितम्बाः
किलभूधराणामुत स्मरस्मेरविलासिनीनाम् ॥ १८ ॥

टीका–हे श्रेष्ठपुरुषो मत्सरभाव छोडकें पुनः विचारकें मर्यादा सहित कहो के तो निश्चयकर पर्वतोंके नितंब मध्यभाग सेवने योग्य हैं अथवा कामदेवसैं भरी हुई स्त्रियनके नितंब सेवने योग्य हैं १८

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे
गती पण्डितानां तत्त्वज्ञानामृताम्भः

प्लुतललितधियां यातु कालः कदाचित्॥
नो चेन्मुग्धांगनानां स्तनजघनभरा-
भोगसंभोगिनीनां स्थूलोपस्थस्थली-
षु स्थगितकरतलस्पर्शलोलोद्यतानाम्

टीका–स्वभावहीसें चंचल असार संसारके बीच्चमें पंडितनकी दोय गती हैं तत्वज्ञानरूप अमृतोदकसें युक्त बुद्धिमानोंका काल गच्छंतु जाउ नोचेत् मुग्धांगनाके पुष्टस्तन और जघनके भोगमें सुखदाई स्त्रीके शरीरपर हाथदीये चंचलतासें उद्योगमें जो तत्पर हैं उनका काल अच्छा व्यतीत होता है॥१९॥

मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरो-
रुहैः ॥ पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे
रत्नमयीव सा ॥ २० ॥

टीका–चंद्रकांत मुखसें और महानील केशोंसे और पद्मराग हाथोंसें ऐसी रत्नमयी वह स्त्री शोभा देती है ॥ २० ॥

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ॥
एताःप्रविश्य सदयं हृदयं नराणां किं
नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥ २१ ॥

T

टीका–मोहित करलेती और मदोन्मत्त करदेती और विटंबना कराती और निर्भर्त्सना कराती और रमण कराती और विरहरूप विषाद उपजाती ऐसी यह स्त्रियां मनुष्यके सदयत्दृदयमें प्रवेश करके क्या नहि कर्त्ती ॥ २१ ॥

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणां छाया-
सु तन्वी विचचार काचित्॥ स्तनो
त्तरीयेण करोद्धृतेन निवारययन्ती
शशिनो मयूखान् ॥ २२ ॥

टीका–वनके वृक्षोंकी छायामें पुनःपुनः विश्राम लेती कोइएक स्त्री स्तनोंके वस्त्र हाथसें दूरकरनेकरकें चंद्रमाकी किरणकी शोभा दूरकरती हुई जाती है

अदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्ट्वा परिष्वं-
गरसैकलोला ॥ आलिंगितायां पुनरा-
यताक्ष्यामाशास्महे विग्रहयोरभेदम्२३

टीका–(आयताक्षी) विशालनेत्रवाली स्त्रीकों जबतक नहिदेखें तब तक तो देखनेकी इच्छा रहती हैं और देखते हैं तब उस्सें आलिंगनके रसकी इच्छा रहती है और आलिंगनकीयें दोनों हम एक रूपहो जावैं ऐसी इच्छा रहती है ॥ २३ ॥

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दनं
वपुषि कुंकुमान्वितम्॥ वक्षसि प्रियतमा
मनोहरा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः२४

टीका–जिनके विकसित मालतीके फूलनकी माला शिरपर पहिरनेकों है और केशरयुक्त चंदन शरीरके लगा हुवा है और सुंदर प्यारी स्त्रियें हृदयमें लपटके रहती हैं उनके तो शेषरहाहुवा स्वर्गका सुख आय मिला है ॥ २४ ॥

प्राङ्मामेति मनागमानितगुणं जाताभिलाषं
ततः सव्रीडं तदनु श्लथोद्यतमनु-
प्रत्यस्तधैर्यं पुनः ॥ प्रेमार्द्रस्पृहणीयनिर्भररहःक्रीडा प्रगल्भा ततो निः
शंकांगविकर्षणादिकसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् ॥ २५ ॥

टीका–कुलस्त्रीका रमण अच्छा है कैसें कि प्रथम तो नहि नहि करती और किंचित् अनादरकरणा फिर अभिलाष रखना और लज्जायुक्त शिथिलतासें धैर्यका त्याग करना पुनः प्रेमरससें बहुतसराहने योग्य एकांत क्रीडामें लज्जाका त्यागकरना अरु निःशंक अंगके खेंचनेसें अधिक सुखका देना ॥ २५ ॥

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां
मुकुलितनयनानांकिंचिदुन्मीलिताना-
मू॥ सुरतजनितखेदस्वार्द्रगण्डस्थली-
नामधरमधु वधूनां भाग्यवन्तःपिबन्ति

टीका—छातीसें मिलिहुई और केश जिनके खुले हुए हैं और कुछ कुछ नेत्र मिलेहुवे हैं अरु किंचित् खुलेहुवे है और मैथुनके श्रमसें पसीनेयुक्त है गंडस्थल जिनके ऐसी स्त्रियोंके अधरामृतकों भाग्यवंत पुरुष पान करते हैं ॥ २६ ॥

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोऽनुसं
विदं कुरुते ॥ मिथुनैर्मिथोवधारितमवि
तथमिदमेव कामनिर्वहणं ॥ २७ ॥

टीका—आलस्यभरी नेत्रवाली स्त्रियोंकों कामसें पूरनकरना यही कामका पूजन है इनकों दोनू स्त्री पुरुषही परस्पर जानते हैं ॥ २७ ॥

इदमनुचितक्रमश्च पुंसां यदिह जरा
स्वपि मान्मथा विकाराः ॥ तदपि च
न कृतं नितम्बिनीनां स्तनपतनाविधि
जीवितं रतं वा ॥ २८ ॥

टीका—यह विधाताने पुरुषोंके वडी अनुचित

और उलटीबातकरी बुढापेमेंभि कामका विकार उत्पन्न होना ऐसेंहि स्त्रियोंकोभी न किया कि तबलग स्तन न गिरें जबलग जिये और कामचेष्टा राखे॥ २८ ॥

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता ॥
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव संगमः

टीका–समागममें स्त्री पुरुषका एक चित्तहोना यही लोकमें कामका फल है अरु जो दोनोंका एक चित्त न होय तो मृतकका समागम है ॥ २९ ॥

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गाढा रसादलसास्त
था भणितिमधुरा मुग्धप्रायाः प्रकाशि
तसंमदाः ॥ प्रकृतिसुभगा विश्रम्भार्हाः
स्मरोदयदायिनो रहसि किमपि स्वैरा
लापा हरन्ति मृगीदृशाम् ॥ ३० ॥

टीका–प्रणय प्रीतिसें मधुर और प्रेमसहित और अतिशयरससें आलस्ययुक्त और रतिके शब्दसें मधुर और मुग्धप्राय और आनंद प्रकाश करनेवाले और स्वभावहीसें सुंदर और बिश्वासयोग्य और स्मरके उदयकों देनेवाले ऐसे मृगनयनी स्त्रियोंके एकांतमें यथेष्टवचन मनको हरण करलेते हैं ॥ ३० ॥

आवासः क्रियतां गांगे पापवारिणि

T

वारिणि ॥ स्तनमध्ये तरुण्या वा मनो
हारिणि हारिणि ॥ ३१ ॥

टीका—अहोमित्र पापकों मिटानेवाला है जल जिसका ऐसी श्रीगंगाके तटपर वासकरना अथवा मनोहर मोतियनके हारयुक्त ऐसे तरुणी स्त्रियोंके स्तनोंपर वासकरना ॥ ३१ ॥

प्रियपुरतो युवतीनां तावत्पदमातनोतु
हृदि मानः ॥ भवति न यावच्चंदनतरु
सुरभिर्मधुसुनिर्मलःपवनः ॥ ६२ ॥

टीका—पुरुषके आगे स्त्रियनके हृदयमें मान तहां तलक रहता है कि जांलग चंदनकी सुगंधयुक्त मलयाचलका निर्मल पवन नहिचलै ॥ ३२ ॥

अथ ऋतुवर्णनम्। तत्रादौ वसन्तस्य।

परिमलभृतो वाताः शाखा नवांकुर-
कोटयो मधुरविरतोत्कण्ठा वाचः प्रियाः
पिकपक्षिणाम् ॥ विरलसुरतस्वेदोद्गारा
वधूवदनेन्दवः प्रसरति मधौ रात्र्यां
जातो न कस्य गुणोदयः ॥ ३३ ॥

टीका—सुगंधयुक्त पवन चलरहा है और वृक्षोंकी शाखाके नवे पत्रोंके अंकुर निकलरहे हैं और को-

किल पक्षियोंके अतिउत्कंठायुक्त प्रिय मधुर वचन हो रहे हैं और संभोगसमय उत्पन्नभया स्वल्प पसीना तिनयुक्त स्त्रियनके वदनरूपि चंद्रमा भया इत्यादिक वसंतऋतुके आनेपर होतेभये तो उनहि वसंतऋतुकी रात्रीमें किसके (गुणोदय) कामोद्दीपन नहि होता ॥

मधुरयं मधुरैरपि कोकिलाकलकलै-
र्मलयस्य च वायुभिः ॥ विरहिणः प्र-
णिहन्ति शरीरिणो विपदि हन्त
सुधापि विषायते ॥ ३४ ॥

टीका–यह वसंतऋतु मधुर कोकिलके वचनसें और मलयाचलके पवनसें विरहियोंके शरीरका वध कर्त्ता है तो देखो विपत्तिमें अमृतभि विषतुल्य हो जाता है ॥ ३४ ॥

आवासः किल किंचिदेव दयितापा-
र्श्वे विलासालसः कर्णे कोकिलकाकली-
कलरवः स्मेरो लतामण्डपः ॥ गोष्ठी
सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः
सितांशोः कराः केषांचित्सुखयन्ति
नेत्रहृदये चैत्रे विचित्राः क्षपाः ॥ ३५ ॥

टीका–विलास भोगसें शिथिल होके स्त्रीके पास

रहना येभि किंचित् प्रिय है और कानसें कोकिलाके सूक्ष्म तथा गंभीर शब्द सुनना प्रिय हैं और लता वेलीका मंडप प्रिय है और अच्छे कविजनोंसें गोष्ठी करना प्रिय है और चंद्रमाकि किरण सेवने योग्य हैं यह इतने पदार्थ कितनेकके नेत्र तथा हृदयके सुखकारी हैं ऐसें चैत्र मासमें रात्रियां अनेकरूप होती हैं

पान्थस्त्रीविरहानलाहुतिकलामातन्वती
मञ्जरी माकन्देषु पिकांगनाभिरधुनासो
त्कण्ठमालोक्यते ॥ अप्येते नवपाटला
परिमलः प्राग्भारपाटच्चरा वांति क्लांति
वितानतानवकृतःश्रीखण्डशैलानिलाः

टीका—वसंतमें आम्रकी मंजरी पांथजनकी स्त्रियोंके विरहरूपी अग्नीमें आहुति देती हैं उन्हें कोकिला उत्कंठासें देखती हैं और नवीन पाटलके पुष्पकी सुगंधकों चुरानेवाले अरु विरहविस्तारकों करनेवाले ऐसे मलयाचलके पवन चलरहा है ऐसे वसंतऋतुमें किसके उत्कंठा नहिं होती ॥ ३६ ॥

सहकारकुसुमकेसरनिकरभरामोद-
मूर्च्छितादिगन्ते ॥ मधुरमधुविधुरम-
धुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा ॥ ३७ ॥

टीका—आम्रके कुसुमकी केशरोंके समूहकी सुगंधमें दिशाओं छाय रही और मधुर पुष्परस पानकरकें भ्रमर उन्मत्तहो रहे हैं ऐसे वसंतऋतुमें किसके उत्कंठा नहि होती ॥ ३७ ॥

॥ अथ ग्रीष्मवर्णनम् ॥

अच्छाच्छचन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च ॥
मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठं
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्द्धयन्ति ३८

टीका—अतिस्वच्छ चंदनके रससें जिन स्त्रियोंका हाथ भीनेहै और फुहारेयुक्त घर है और सुगंधिपुष्प और प्रफुल्लितचांदनी और मंद मंद पवन अरु सुगंधि लता और अच्छी महलकी छत यह इतने पदार्थ मद्कों और मदनकों बढाते हैं ॥ ३८ ॥

स्रजो हृद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्र-
किरणाः परागः कासारो मलयजरजः
सीधु विशदम् ॥ शुचिः सौधोत्सङ्गः
प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो निदाघे तूर्णं
तत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः ॥ ३९ ॥

टीका—अच्छी सुगंधि माला और पंखेकावायु

और चंद्रमाकी किरण और पुष्परज और तलाव और चंदन और उज्वल मंद और अच्छा महलका ऊपरभाग और सूक्ष्म कोमल वस्त्र और कमलनयनी स्त्री इत्यादिक पदार्थोंका सुख उष्मकालमें कोई पुण्यवान् पुरुष पाते हैं ॥ ३९ ॥

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदमलरश्मिः
शशधरः प्रियावक्राम्भोजं मलयज-
रजश्चातिसुरभि ॥ स्रजो हृद्यामो-
दास्तदिदमखिलं रागिणि जने करो-
त्यन्तःक्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ४०

टीका—स्वेत स्वच्छ गृह—निर्मल—चांदनियुक्त चंद्रमा—प्यारीका मुखकमल—अतिसुगंधि चंदन—अच्छी सुगंधि पुष्पोंकीमाला ये सब वस्तु अनुरागि पुरुषोंके हृदयमें अत्यंत क्षोभकरतेहैं परंतु विषयसंसर्गसें विमुख जनकों क्षोभ नहि करते हैं ॥ ४० ॥

॥ अथ वर्षासमयः ॥

तरुणी चैषा दीपितकामा विकसित-
जातीपुण्यसुगन्धिः ॥ उन्नतपीनपयो-
धरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम् ४१

टीका—तरुणवेषवाली फिर कामदेवकों उदयकरने-

वाली और विकसित जातीपुष्पके सुगंधवाली और उन्नत पुष्ट पयोधरके भारयुक्त ऐसी वर्षाऋतु किसके हर्ष नहि उपजाती ॥ ४१ ॥

वियदुपचितमेघं भूमयः कन्दलिन्यो
नवकुटजकदम्बामोदिनो गन्धवाहाः ॥
शिखिकुलकलकेकारावरम्या वनान्ताः
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयन्ति ४२

टीका—आकाश मेघयुक्त है और प्रफुल्लित पृथ्वी हो रही है और नवीन कुटज अरु कदंबके पुष्पोंके समूहोंसें सुगंधितवायु और मयूरोंके समूहकी सुंदरवाणीसें सब वन शोभित है यह सब पदार्थ वर्षाऋतुमैं सुखी दुःखी दोनोंकों मदनाविर्भावसें उत्कंठितकर्त्ते हैं

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोपि
नर्तितमयूराः ॥ वसुधाकंदलधवला
तुष्टिं पथिकः क्व यातु संत्रस्तः ॥ ४३ ॥

टीका—कोइ पथिक जाता है जिनके ऊपर मेघ घनघोर छायरहाहै और तिरछे वाम दक्षिणमें पर्बतोंपर मयूर नाचरहे है और पृथ्वी अंकुरादिकनसें धवलितहो रही है ऐसे विरहके उद्दीपन करनेवाले चारोंतरफ पदार्थ हैं तब विरहीकों संतोष कैसे आवे

इतो विद्युद्वल्लीविलसितमितः केतकितरोः
स्फुरद्गन्धः प्रोद्यज्जलदनिनदस्फूर्जितमितः ॥
इतः केकिक्रीडाकलकलरवः पक्ष्मलदृशां
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः संभृतरसाः ॥ ४४ ॥

टीका—एकतरफ विजलीका विलसित और एकतरफ केतकीके वृक्षकी उत्कृष्ट सुगंध और एकतरफ मेघकी गर्जना और एकतरफ मयूरकि क्रीडाका कलकल इतने सब एकत्रभयें वहां विरहिणी स्त्रियोंके रसभरे दिवस कैसें जायगें ॥ ४४ ॥

असूचीसंसारे तमसि नभसि प्रौढजलदध्वनिप्राप्ते
तस्मिन् पतति दृषदा नीरनिचये ॥
इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितं
मुदं च म्लानिं च प्रथयति पथिष्वेव सुदृशाम् ॥ ४५ ॥

टीका—जिसमें कोई पदार्थ नहि दिषे ऐसे अंधकार युक्त श्रावणमासमें सजल मेघ गर्जारव कररहे हैं और करक सहित जलका समूह बरस रहे हैं उससमय सुवर्ण सदृश विजलीका चमत्कार है वह स्त्रियोंके पथिक जनोंको मुद हर्ष अरु ग्लानिको विस्तार करते हैं ४५

आसारेण न हर्म्यतः प्रियतमैर्यातुं
बहिः शक्यते शीतोत्कम्पनिमित्तम्
आयतदृशा गाढं समालिंग्यते ॥ जाताः
शीतलशीकराश्च मरुतो वान्त्यन्तखेदच्छिदो
धन्यानां बत दुर्दिनं सुदिनतां
याति प्रियासंगमे ॥ ४६ ॥

टीका—वर्षाऋतुमें दिवसकांभि बहुतसी वर्षाके बरसनेसें स्त्री पुरुष महलोंसें बाहिर जानेकों समर्थ नहि तब शीत लगता है और देह कंपती है ऐसे कहकें स्त्रियों भर्त्तारसें आलिंगन कर्त्ती हैं अरु शीतल जलके कणसहित वायु मैथुनके अंतमें श्रमकों हरनेवाला चलता है ऐसे धन्यपुरुषोंके प्यारीके संगमें दुर्दिनभि सुदिन हो जाता है ॥ ४६ ॥

॥ अथ शरत् ॥

अर्द्धंनीत्वा निशायाःसरभससुरतायासखिन्नश्लथांगः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो
मधुमदनिरतो हर्म्यपृष्ठे विविक्ते ॥ संभोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतातर्जितं
कर्करीतो ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं
पिबति न सलिलं शारदं मंदभाग्यः ४७

टीका–कोई कामी पुरुष अर्धरात्री व्यतीतभयें सुरतके श्रमसें शरीर थक रह्यौ और अधिक प्यासा अरु मदोन्मत्त महलूंके पृष्ठपर एकांत बैठा ऐसेंहि मैथुनकि थकिहुई स्त्रीने शिथिल भुजाओंसे झारीलाकर दिये और चांदनीमे जिसकी स्वच्छधारा दीख पडती है ऐसे शरदऋतूके जलकों न पीवे वह मंदभागी है ४७

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना माञ्जि-
ष्ठवासोभृतः काश्मीरद्रवसान्द्रदिग्ध-
वपुषः खिन्ना विचित्रैरतैः ॥ पीनोरः
स्थलकामिनीजनकृताश्लेषा गृहा-
भ्यन्तरं तांबूलीदलपूगपूरितमुखा
धन्याः सुखं शेरते ॥ ४८ ॥

टीका–कोई पुरुष हेमंतऋतुमें दहि दुग्ध घृतकों खाते हैं और मजीठमें रंगेहुवे वस्त्रकों धारण कर्त्ते हैं और केशर कुंकुमके सघनरस शरीरके लगाया है और विचित्रप्रकारके कामसेवनसें खिन्न और पुष्ट स्तन ऐसी स्त्रियोंसे आलिंगन करकें फिर पान सोपारी खाते हुवे ऐसें कोई धन्यपुरुष हैं वह घरके अंदर शयन कर्त्तें हैं ॥ ४८ ॥

॥ अथ शिशिरः ॥

चुबन्तो गंडभित्तीरलकवति मुखे सी-
त्कृतान्यादधाना वक्षः सूत्कंचुकेषु
स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ॥
ऊरूनाकंपयंतः पृथुजघनतटात्स्रंस-
यंतोंशुकानि व्यक्तंकांताजनानांविट-
चरितकृतः शैशिरा वांति वाताः ॥४९॥

टीका—शिशिर ऋतुमें कामिपुरुष जो भोगसमय कर्त्ता है ऐसे वायुभी करते हैं गंडस्थलकों चुंबन कर्त्ते औ केशोंवाले मुखमें सीरशब्द कराते हैं और कंचुकि बिगर वक्षस्थलपर स्तनोंके रोमावलिकों पेदा कर्त्ते हैं और जंघाओंको कंपाते हैं और मोटी जंघाओंसें वस्त्रोंको उडाते हैं ऐसें प्रगट स्त्रीजनोंकी चेष्टा कर्त्ते हुवे शिशिर ऋतुके पवन चलते हैं ॥ ४९ ॥

केशानाकलयन्दृशो मुकुलयन्वासो
बलादाक्षिपन्नातन्वन्पुलकोद्गमं प्रकट-
यन्नालिंग्य कम्पञ्छनैः ॥ वारंवारमु-
दारसीत्कृतकृतो दन्तच्छदान्पीडय-
न्प्रायः शैशिर एष संप्रति मरुत्कांतासु
कांतायते ॥५०॥

टीका—केशोंको विखेरता नेत्रोंकों किंचित् किंचित् मूंदता वस्त्रकों बलात्कारसें उडाता देहमें रोमांचित् कर्त्ता चलनेमें उद्वेग और कंप प्रगटकरता वेर वेर सीसी करनेसें ओष्ठकों पीडित कर्त्ता इसी प्रकारका शिशिर ऋतुका वायु स्त्रियोंमें पतिकासा आचरण कर्त्ता है ॥ ५० ॥

असाराः सन्त्वेते विरतिंविरसायास-
विषया जुगुप्सन्तां यद्वा ननु सकल-
दोषास्पदमिति ॥ तथाप्यन्तस्तत्वे
प्रणिहितधियामप्यतिबलस्तदीयोऽ-
नाख्येयःस्फुरतिहृदयेकोऽपि महिमा ५१

टीका—यह सब भोगविषय असार हैं और वैराग्यमें विरस करनेवाले हैं और सब दोषोंका घर समुजकर निंदा करे तोभि इनविषयोंकि महिमा बलवान् है कहिनेके योग्य नहि ब्रह्मके विचारमें स्थिरबुद्धिवालेके हृदयमेभि प्रकाशित होता है ॥ ५१ ॥

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तगु-
रवो विदग्धालापानां वयमपि कवीना-
मनुचराः ॥ तथाप्येतद्भूमौ नहि पर-
हितात्पुण्यमधिकं न चास्मिन् संसारे

कुवलयदृशो रम्यमपरम् ॥ ५२ ॥

टीका–तुम वेदांतके वेत्ताओंके आप्तगुरुहो अरु हम अच्छे वचनयुक्त कविजनोंके अनुचर हैं तथापि मैं ऐसे जानता हूं कि पृथ्वीपर परके हित करनेसें अधिक पुण्य नहि और इससंसारमें कमलनयनी स्त्रियोंसे अधिक सुंदर वस्तु नहि ॥ ५२ ॥

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ॥
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ५३

टीका–इस संसारमें बिगर प्रयोजन बहुतसी बकवादसें क्या प्रयोजन है मैं कहताहुं सो सुनो जगत्में दोयही वस्तु सदासेवने योग्य हैं एक तो नवीन अपूर्वी मदकी लीलायुक्त और स्तनके भारयुक्त ऐसे स्त्रियोंका यौवन अथवा वन ॥ ५३ ॥

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाताल्लोकेषु
सर्वेषु च तथ्यमेतत् ॥ नान्यन्मनोहारि
नितम्बिनीभ्यो दुःखैकहेतुर्नच कश्चि-
दन्यः ॥ ५४ ॥

टीका–हे लोको हम सत्य कहते हैं इसमें कुछभि

पक्षपात्त नहि सब जगत्मैं यहहि विदित है कि स्त्रियों-से अन्य सुखदाई वस्तु कोई नहि और दुःखदायकभि कोइ नहि ॥ ५४ ॥

॥ अथ दुर्विरक्तप्रशंसा ॥

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्म-
लविवेकदीपकः॥यावदेव न कुरंगचक्षु-
षांताड्यते चपललोचनाञ्चलैः ॥ ५५ ॥

टीका—पुण्यवान् पुरुषोंके निर्मल विवेकरूपी दीपक तांलग प्रकाश होता है जांलग मृगनयनी स्त्रियोंके चंचल लोचनसें युक्त न होय ॥ ५५ ॥

वचसि भवति संगत्यागमुद्दिश्य वार्त्ता
श्रुतिसुखरमुखानां केवलं पण्डितानाम् ॥
जघनमरुणरत्नग्रन्थिकाञ्चीकलापं
कुवलयनयनानां को विहातुं समर्थः ५६

टीका—शास्त्रकेवक्ता पंडितोंके मुखसें स्त्रीका संग त्यागकरनेकी केवल कथा मात्रही होरही है परंतु लालरत्न जडित कटिमेखलायुक्त ऐसें स्त्रियोंके जघनस्थलकों त्यागनेकों कौन सामर्थ है ॥ ५६ ॥

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दाति योलीक-
पण्डितो युवतीः ॥ यस्मात्तपसोऽपि-

फलंस्वर्गस्तस्यापिफलं तथाप्सरसः५७

टीका—जो स्त्रियोंकी निंदा कर्त्ता है वह मिथ्या पंडित है आपतो ठगायगया और परकोंभि ठगता है क्योंकि तपस्याका फल स्वर्ग अरु स्वर्गका फल अप्सराका भोग है ॥ ५७ ॥

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः ॥
किं तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः॥५८ ॥

टीका—उन्मत्त हस्तीकें मस्तक विदारनेकों शूरबीर पृथ्वीपर अनेक हैं और कितनेक प्रचंड सिंहके मारनेवालेभि हैं परंतु बलवानोंके आगे हठकरके ऐसा कहताहूं कि कामदेवके मदका दलनेवाला तो कोई विरलाहि मनुष्य है ॥ ५८ ॥

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति स नर-
स्तावदेवेन्द्रियाणां लज्जां तावद्विधत्ते
विनयमपि समालम्बते तावदेव ॥
भ्रूचापाकृष्टमुक्ताः श्रवणपथगता नी-
लपक्ष्माण एते यावल्लीलावतीनां न
हृदि धृतिमुषो दृष्टिबाणाःपतन्ति ॥५९॥

टीका–यह नर सन्मार्गमें तांलग चलता है और इंद्रियोंका रोकनाभि तांलग है और लज्जा अरु विनयभि तांलागही है जांलग भौंहरूपी धनुषसें खेंचके चलाये और नील नेत्रके पक्ष्मरूपहे पुंखारा जिनके और धीरजकों ठगनेवाले ऐसे लीलावति स्त्रियोंके दृष्टिरूपी बाण जांलग नहि लागे ॥ ५९ ॥

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदंगनाः॥
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः

टीका–जो कामकों स्त्रियोंनें बिगरविचारभि प्रेमसें आरंभकर देंती हैं तो उस कामके रोकनेकों ब्रह्माकींभि शक्ति नहि ॥ ६० ॥

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता
॥ यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हंत
पञ्चेषुपावकः ॥ ६१ ॥

टीका–तांलग महत्वपणा और पंडितपणा और विवेकपणा है जांलग मनुष्यके शरीरमें कामाग्नि प्रज्वलित नहि होती ॥ ६१ ॥

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मवोधोऽपिबाढं
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो
भाजनं सद्गतीनाम्॥येनैतस्मिन्नि-

रयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती वामाक्षीणां
भवति कुटिलभ्रूलताकुञ्चिकेव ॥ ६२ ॥

टीका–शास्त्रके वेत्ता और प्रसिद्ध विनयवान् और ज्ञानी सद्गतीमे जानेवाला ऐसा तो कोई विरला है क्यौंकि इस संसारमें सुंदरनेत्रवालि स्त्रियोंके वक्र भ्रूलतारूपी कुंचिका नरकरूपी नगरके द्वारकों उघाडनेवाली है इस्सें कोई सद्गति नहि जासकते ६२

कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छ-
विकलो व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलश-
तैरावृततनुः ॥ क्षुधाक्षामो जीर्णोऽपि
करककपालार्पितगलः शुनीमन्वेति
श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः ॥६३ ॥

टीका–दुर्बल काणा लंगडा कानरहित पूंछरहित फेर अनेक व्रण राधसें भरे हैं और बहोतसें शरीरमे कीडे पडरहे हैं भूखा अरु वृद्ध है और मट्टीके घडेका घंघेरा गलेमें आगया है ऐसाभि श्वान कुत्तीके पीछे भोगके लिये जाता है तो देखो यह कामदेव मरेकोंभि मारता है ॥ ६३ ॥

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य जननीं सर्वार्थ
सम्पत्करीं ये मूढाः प्रविहाय यांति कुधि

योमिथ्याफलान्वेषिणः ॥ ते तेनैव नि
हत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिताः
केचित्पञ्चशिखीकृताश्च जटिलाः कापा
लिकाश्चापरे ॥ ६४ ॥

टीका—जैसें राजाकी मुद्रा सबकार्य संपादन कर्त्री है तैसें यह स्त्री कामदेवकी मुद्राहै मदनकों उत्पादन करनेवाली और सर्वार्थकों संपादन करनेवाली है इसकों कोई कुबुद्धि मूर्खजन छोडकें स्वर्गादिक सुखोंकि इच्छा करके जाते हैं तिनोंको तिस कामदेवनें निर्दयीपणेसें कितनेककों नग्नकिया किसीको शिरमुंडवाया किसीके पंचकेशी रखाई किसीके हाथमें ठीकरादेके भीख मंगवाई ॥ ६४ ॥

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुप
र्णाशनास्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं
दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥ शाल्यन्नं सघृतं
पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवास्तेषा
मिंद्रियनिग्रहो यदि भवेद्विंध्यस्तरे
त्सागरं ॥ ६५ ॥

टीका—विश्वामित्र पराशर इत्यादिक बडे बडे ऋषि वायु जल और पत्ते खायके रहतेथे वेभी स्त्रीके

सुंदर मुखकमलकों देखकें मोहकों प्राप्त हुए तो अब जो मनुष्य घी दूध दहि सहित अच्छे अच्छे अन्नकों खाते हैं तिनोंके इंद्रियका रोकना केसें होय अत्रदृष्टांतः जो विंध्याचल पर्वत समुद्रपर तिरजाय तो तिनकी इंद्रियां रुकें ॥ ६५ ॥

॥ इति दुर्विरक्तप्रशंसा समाप्ता ॥

संसारेस्मिन्नसारे कुनृपतिभुवनद्वारसे
वावलम्बव्यासंगव्यस्तधैर्यं कथममल
धियो मानसं संविदध्युः ॥ यद्येताः प्रो
द्यदिंदुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोज
नेत्राः प्रेंखत्कांचीकलापाः स्तनभरवि
नमन्मध्यभागास्तरुण्यः ॥ ६६ ॥

टीका—उदित चंद्रमाकीसी कांतिधारी कमलनयनी और शब्दायमान कटिमेखला धारी और स्तनोंके भारकर नमीं हुइ कटि जिनकी ऐसी तरुणी स्त्रियां जगत्में न होतीं तो निर्मल बुद्धिवाले पंडित मनुष्य इस असार संसारके बीचमें कुबुद्धि राजोंके द्वारकी सेवा नानाप्रकारसें अधीरचित्त होके नहि कर्त्ते केवल स्त्रीनिमित्त राजसेवा कर्त्ते हैं ॥ ६६ ॥

सिद्धाध्यासितकन्दरे हरवृषस्कन्धाव

गाढद्रुमेगङ्गाधौतशिलातले हिमवतः
स्थाने स्थिते श्रेयसि ॥ कः कुर्वीत
शिरः प्रणाममलिनं मानं मनस्वीजनो
यद्यत्रस्तकुरंगशावनयना न स्युः
स्मरास्त्रं स्त्रियः ॥ ६७ ॥

टीका–सिद्धलोक जिसकंदरामें बैठे हैं और महादेवजीका वृषभ जहां वृक्षोंमे खंधा रगडता फिरताहै और गंगाजलसें जहांके पाषाण धोयेजाते हैं ऐसा हिमालयका स्थान कल्याणकारी छोडकर कौन मस्तक नमायकें प्रणाम करै और अपनें मानकों मलिन करै जो भयरहित हिरण पुत्रके सदृश नेत्रवाली कामदेवके अस्त्ररूप स्त्री घरमें न होती तो ॥ ६७ ॥

संसार तव निस्तारपदवी न दवीयसी ॥
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदि-
रेक्षणाः ॥ ६८ ॥

टीका–रेसंसार तुजसें पार होना कुछ दुस्तर नहीथा जो अच्छे नेत्रवाली दुस्तर स्त्रियां बीचमें बाधक नहोतीं तो ॥ ६८ ॥

॥ अथ यौवनप्रशंसा ॥

राजंस्तृष्णांबुराशेर्नहि जगति गत

कश्चिदेवावसानं को वार्थोऽर्थैःप्रभूतैः
स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे ॥
गच्छामः सद्म तावद्विकसितनयनेंदी
वरालोकनानां यावच्चाक्रम्यरूपं झटि-
ति न जरया लुप्यते प्रेयसीनां ॥६९॥

॥ इति स्त्रीणां परित्यागविधिः ॥

टीका—हे राजन् तृष्णारूप समुद्रका पार कोई नहि पाया और जब हमारी अनुरागसहित युवा अवस्था देहहीमें जीर्ण होगई तब अधिक द्रव्यहि प्राप्त करनेसें मेरेकों क्या प्रयोजन तो अब शीघ्रहि घरकों चलेजावैं जांलग विकसित कमलसदृश नेत्रसें देखनेवाली स्त्रियोंका रूप जरावस्था विगाडे नहि तांलग घरजाना अच्छा ॥ ६९ ॥

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःख
संप्राप्तिहेतुर्मोहस्योत्पत्तिबीजं जलधर
पटलं ज्ञानताराधिपस्य ॥ कन्दर्पस्यै
कमित्रं प्रकटितविविधस्पष्टदोषप्रब
न्धं लोकेऽस्मिन्नह्यनर्थैनिजकुलदहनं
यौवनादन्यदस्ति ॥ ७० ॥

टीका—रागका एक घर और सैंकडां नरकोंके

दुःख प्राप्तिहोनेका हेतु और मोहकी उत्पत्तिका बीज और ज्ञानरूपी चंद्रमाके टालनेकों मेघ और कामदेवका एकही मित्र और अनेक दोषोंका प्रगटकरनेवाला और वैराग्य अरु नीतिका हरनेवाला ऐसा इसलोकमें युवावस्था बिगर दूसरा कोई अनर्थ नहि

श्रृंगारद्रुमनीरदे प्रचुरतः क्रीडारस
स्रोतसिप्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरतामु
क्ताफलोदन्वति ॥ तन्वीनेत्रचकोर
पारणविधौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ धन्यः
कोऽपि न विक्रियां कलयति प्राप्ते नवे
यौवने ॥ ७१ ॥

टीका—श्रृंगाररूपि वृक्षकों सींचनेवाला और विस्तरित क्रिडा रसका प्रवाह और कामदेवका प्रियबंधु और चातुर्यतारूप मुक्ताफलका समुद्र और स्त्रियोंके नेत्ररूपी चकोरके पूरणचंद्रमा और सौभाग्यरूप लक्ष्मीका भंडार ऐसे नवीन यौवनकों पायके जो पुरुष विकारकों प्राप्ति नाहिहोता है सो धन्य है ॥ ७१ ॥

अथ कामिनीगर्हणप्रशंसा ।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रोणी
भरेत्युत्सुकः पीनोत्तुंगपयोधरेति सुमु

खाम्भोजेति सुभ्रूरिति ॥ दृष्ट्वा माद्य-
ति मोदतेऽतिरमते प्रस्तौत्ति जान-
न्नपि प्रत्यक्षाशुचिपुत्तिकां स्त्रियमहो
मोहस्य दुश्चेष्टितं ॥ ७२ ॥

टीका–कांता कमललोचना बडे नितंबवाली पुष्ट और उत्तुंग उंचे स्तनवाली सुंदर कमलमुखी और सुंदर भौंहवाली यों कह कह पंडितलोगभि स्तुति करते हैं देखके मोहित होते आनंदपाते रमणकर्त्ते उत्कंठितहोते प्रत्यक्षहि अशुचिकी पूतली है उसपर देखो मोहकी क्या खोटीचेष्टा है ॥ ७२ ॥

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्माद
वर्द्धिनी ॥ स्पृष्टा भवति मोहाय सा
नाम दयिता कथम् ॥ ७३ ॥

टीका–स्मरणसें संताप देती है और देखनेसें उन्माद बढाती है और स्पर्शसें मोहित करलेती है ऐसी स्त्रीकों प्रिया कौन कहता है ॥ ७३ ॥

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा ॥
चक्षुःपथादपगता विषादप्यतिरिच्यते

टीका–जबलग स्त्री नेत्रके सामने है तबलग तो

अमृतमय है और जब नेत्रसें दूरहुई तब विषसेंभि अधिक होजाती है ॥ ७४ ॥

नामृतं न विषं किंचिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ॥ सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ॥ ७५ ॥

टीका–स्त्रियोंसे परे कोई अमृत नहि और विष नहि जो वह प्रीतियुक्त है तो अमृतवल्लि है और प्रीति तोडबैठे तो विषकी वेली है ॥ ७५ ॥

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥ स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं स्त्रीयन्त्रं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥ ७६ ॥

टीका–संशयका भंवर और अविनयाका घर और साहसका नगर और दोषोंका समीप और अनेक कपटमइ और अविश्वासका क्षेत्र और स्वर्गद्वारका विघ्नकारक और नरकपुरका मुख और सर्वमायाकरंड अमृतमय विषरूप ऐसा प्राणियोंके मोहरूप फांसी स्त्रीयंत्र किसने रचा है ॥ ७६ ॥

T

सत्यत्वेन शशांक एष वदनीभूतो
नवेन्दीवरद्वन्द्वं लोचनतां गतं न कन
कैरप्यंगयष्टिः कृता॥ किन्त्वेकं कवि
भिः प्रतारितमनस्तत्त्वं विजानन्नपि त्व
ङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मंदो जनः
सेवते॥ ७७॥

टीका—यह चंद्रमा सत्यपणेकरकैं स्त्रियोंके मुखरूप नहि और कमल लोचनरूप नहि और सुवर्णसदृश शरीर नहि केवल कविओंकी उपमा है ऐसे तत्वकों जानताहुवाभि मंदजन त्वचा मांस अस्थिमयि स्त्रियों के शरीरकों सेवनकर्त्तें हैं॥ ७७॥

लीलावतीनां सहजा विलासास्तएव
मूढस्य हृदि स्फुरन्ति॥ रागो नलि
न्या हि निसर्गसिद्धस्तत्र भ्रमत्येव
मुदा षडंघ्रिः॥ ७८॥

टीका—स्त्रियोंका लीलाकरना सहजस्वभाव है सोई मूर्खके त्हदयमैं स्फुरता हैं जैसें कमलनींमें ललाई स्वतःसिद्ध है तहां भ्रमर हर्षकर वृथा भ्रमता है

यदेतत्पूर्णेन्दुद्युति हरदुदाराकृति वरं
मुखाब्जं तन्वंग्याः किल वसति तत्रा

धरमधु ॥ इदं तावत्पाकद्रुमफलमिवा
तीव विरसं व्यतीतेऽस्मिन्काले विष
मिवभविष्यत्यसुखदं ॥ ७९ ॥

टीका–पूर्णमासीके चंद्रमाकीछवि हरनहार और सुंदर आकारवाली स्त्रियोंका मुखकमल जिसमें अधरामृत रहता है वह युवाअवस्थामें अछा लगता है फिरवह काल व्यतीतहोनेपर वृद्धपनेमें विषसमान वुरा लगता है पाकद्रुमफलकीपरे जैसें पाकद्रुमका फल कालपायके पकियाहुवा रसवत् होता है अरु वोहि कालातिक्रमहुए विषतुल्य होजाता है ॥ ७९ ॥

उन्मीलत्त्रिवलीतरंगनिलया प्रोत्तुंग
पीनस्तनद्वन्द्वेनोद्यतचक्रवाकमिथुना
वक्राम्बुजोद्भासिनी ॥ कान्ताकारधरा
नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते संसा
रार्णवमज्जनंयदिततोदूरेणसंत्यज्यताम्॥

टीका–शोभित उदर त्रिवलिहि तरंगका समूह है उत्तुंग और पुष्ट दोनोंस्तनहि उसमें चक्रवाकके जोडे हैं जिसका गंभीर आशयो मुखरूपी कमलसें शोभित है ऐसी स्त्रीका आकार धारणकिये नदी है सो मनुष्यो जो

तुम संसारसमुद्रमें मग्न हुवा न चाहो तो इनकों दूरहीसें परित्याग करो ॥ ८० ॥

जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ॥ हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ ८१ ॥

टीका—वातें तो किसी अन्यसें कर्त्ती अरु विलास सहित औरहीकी ओर देखती और हृदयमें औरहीसें मिलनेकी चाह रखती तो देखो इनमेसें कोन स्त्रियनकों प्रिय है इसकी जान नहि पडती ॥ ८१ ॥

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलं ॥ अतएव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ॥ ८२ ॥

टीका—स्त्रियोंके वचनमें अमृत और हृदयमें केवल हालाहल है इस्सें अधरामृतकों पान कर्त्तें हैं और त्हदयकों मुष्टिसें ताडना कर्त्तें हैं ॥ ८२ ॥

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षशिखानलात्प्रकृतिविषमाद्योषित्सर्पाद्विलासफणाभृतः ॥ इतरफणिना दष्टाः शक्याश्चिकित्सितुमौषधैश्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ॥ ८३ ॥

T

टीका–हे सखे योषित्रूपी सर्पसें दूर रहो कैसा है वह सर्प कटाक्षरूपी बाणोकी अग्निसहित और स्वभावहीसें विषम और विलासरूपी फणकों धारनेवाला है इतर सर्पसें दंशितपुरुष औषधीसे चिकित्सा करनेयोग्य है परंतु चतुरस्त्रीके भोगसें ग्रस्त पुरुकों मंत्रवादीभि निश्चयंकर त्यागदेते हैं इस कारणसें दूर रहो

विस्तारितं मकरकेतनधीवरेण स्त्रीसं
ज्ञितं बडिशमत्र भवाम्बुराशौ ॥ येना
चिरात्तद्धरामिषलोलमर्त्यमत्स्यान्
विकृष्य पचतीत्यनुरागवह्नौ ॥ ८४ ॥

टीका–कामदेवरूपी कैवर्त्तकनें इस संसाररूप समुद्रमें स्त्रीरूपी जाल फेलाया है जिसकरकें तत्काल अधररूप मांसके लोभी मनुष्यरूप मच्छ हैं उन्हें वशकर अनुरागरूपी अग्नीमे पकाता है ॥ ८४ ॥

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ॥
मा संचर मनःपान्थ तत्रास्ते स्मर
तस्करः ॥ ८५ ॥

टीका–स्त्रियोंकी कायारूपी कांतार वन कुचरूपी पर्वतोंसे अति दुर्गम हो रहा है उसमें हे पांथ मन तूं मत जा तहां कामदेवरूपी चोर रहता है ॥ ८५ ॥

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेज
स्विना भोगिना नीलाब्जद्युतिनाहिना
वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा ॥ दष्टे संति
चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थि
नो मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य नहि मे
वैद्यो न चाप्यौषधम् ॥ ८६ ॥

टीका–बडा लंबा चंचल वक्रगतिवाला और तेजस्वी फणधारी नीलकमलसा कृष्णसर्पसें दंशित होना अछा परंतु स्त्रीके नेत्रसें डसाना अछा नहि क्योंकि सर्पके डसेहुवेकों तो चिकित्सा करनेवाले धर्मीपुरुष दशोदिशामें है परंतु स्त्रीके नेत्रसें डसेहुवेकों कोई वैद्यनहि और औषधभि नहि ॥ ८६ ॥

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तना
नाम ॥ इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्य
माणो ह्यहितकरणदक्षैः पञ्चभिर्वञ्चि
तोऽस्मि ॥ ८७ ॥

टीका–यह कैसे सुंदर मधुरगीत हैं रूप देखो कैसा है अछा इसवस्तूका रस कैसा स्वादिष्ट है इस वस्तूकी कैसी अछी सुगंध है स्त्रीके स्तनोंका स्पर्श

क्या अच्छा सुख देता है ऐसे पंचेंद्रीके विषयसे भमिया हुवा मैं ठगाय गया हूं यह पंचेंद्री विषय परमार्थ रहित हैं और नरकादिक दुःखके देने वाले हैं ॥८७

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्य
विषयो न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः
शान्तिकशतैः ॥ भ्रमावेशादङ्गे किमपि
विदधद्भव्यमसमं स्मरोऽपस्मारोऽयं
भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥ ८८ ॥

टीका–यह कामदेवरूपी अपस्मार मृगी रोग भ्रमके आवेशसें बडा दुःखदाई शरीरकों तोडता और मनकों भ्रमता अरु नेत्रोंको घुमाता है और इस रोगमें मंत्रोंकी गति नाहि औषधीभि नहि और शांतिकर्म पाठ पूजादिकनसेंभि नाशनहि होता ॥ ८८ ॥

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजी
र्णाखिलाङ्गायचग्रामीणाय च दुष्कु
लाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ॥
गच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मी-
लवश्रद्धया पण्यस्त्रीषु विवेककल्पल-
तिकाशस्त्रीषु रज्येत कः ॥ ८९ ॥

टीका–जन्मांध कुरूप वृद्धपनसें शिथिलांग

ग्रामीण नीचजाति और गलत्कुष्टी ऐसे पुरुषकोंभि स्वल्प धनकी इच्छासें अपने सुंदर शरीरकों समर्पण कर्त्ती ऐसी वेश्या विवेकरूप कल्पलताको काटनेमैं शस्त्ररूप है उनसै कौन बुद्धिमान् रमैं ॥ ८९ ॥

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ॥
कामिभिर्यत्र हूहन्ते यौवनानि धनानि च ॥ ९० ॥

टीका—यह वेश्या कामाग्नीकी ज्वाला है रूपइंधनसें बढीहुइ हैं जिसमैं कामि पुरुष यौवन अरु धनकों होमते हैं ॥ ९० ॥

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं
मनोज्ञमपि ॥ चारभटचौरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥ ९१ ॥

टीका—वेश्याका अधरपल्लव यदि सुंदर है तोभी उसकों कौन कुलीन पुरुष चुंबनकरै क्योंकि ठग ठाकुर चोर नीच नट इत्यादि और जारोंके थूकनेका ठिकाना है ॥ ९१ ॥

॥ इति कामिनीनिगर्हणम् ॥

अथ सुविरक्तप्रशंसा ।

धन्यास्त एव तरलायतलोचनानां

तारुण्यरूपघनपीनपयोधराणाम् ॥
क्षामोदरोपरि लसत्त्रिवलीलतानां
दृष्ट्वाकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम् ९२

टीका–चंचल विशालनेत्रवाली और तारुण्य सुंदररूप घन पीन पयोधरवाली जिनके कृशोदरपर शोभित त्रिवलि जिनोंके ऐसी स्त्रियोंका रूपदेखके जिनोंका मन विकारकों प्राप्त नहि होता वह पुरुष धन्य हैं

बाले लीलामुकुलितममी सुन्दरा दृष्टि-
पाताः किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ
एष श्रमस्ते ॥ सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं
बाल्यमास्था वनान्ते क्षीणोमोहस्तृण
मिवजगज्जालमालोकयामः ॥ ९३ ॥

टीका–हे बाले लीलासें किंचित् विकसित और कटाक्ष हमपर क्या फेंकती है विश्राम ले विश्राम ले हमारेपर तेरा यह श्रम व्यर्थ है क्योंकि अब हम कछु औरहि होगये बाल्यपना हमारा छूटगया बनमें रहते हैं मोहभि क्षीणहोगया और इस जगत्के जालकों तृणसमान देखते हैं ॥ ९३ ॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरद
लप्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेत-

मनया ॥ गतो मोहो ऽस्माकं स्मरश-
वरबाणव्यतिकरज्वलज्ज्वालाः शान्ता-
स्तदपि न वराकी विरमति ॥ ९४ ॥

टीका—इस बाला स्त्रीका क्या अभिप्राय है जो यह कमलदलोंकी प्रभाके तिरस्कार करनेवाले नेत्रोंको मेरीतरफ फेंकती है अब मेरा अज्ञान गया और कामदेवरूपी भीलके बाणोंसे उत्पन्नहुई अग्नी शांत होगई है तथापि यह मूर्खणी बाला बिरामकों प्राप्त नहि होती अर्थात् नेत्रोंका चलना नहि छोडती॥९४॥

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतात-
पत्रोज्ज्वला लक्ष्मीरि त्यनुभूयते स्थिर-
मिष स्फीते शुभे कर्मणि ॥ विच्छन्ने
नितरामनङ्गकलहक्रीडात्रुटत्तन्तुकं
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्य-
द्दिशो दृश्यतां ॥ ९५ ॥

टीका—अछे उज्वल घर और हावभावयुक्त स्त्रीजन और श्वेतछत्र सहित शोभायमानलक्ष्मी तबहि स्थिरतासें भोगमें आती है पुण्यकि वृद्धिहुयें जब पुण्य क्षीणहोजाता है तब कामदेवकी क्रीडाके कलहसें तूटे हारके मोतीयांसमान भ्रष्टहोके शीघ्र दशोदिशामें लुप्तहोजातेहैं

सदा योगाभ्यासव्यसनवशयोरात्मम-
नसोरविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिन-
स्तस्य किमु तैः ॥ प्रियाणामालापैर-
धरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः सनिश्वासा
मोदैः सकुचकलशाश्लेषसुरतैः ॥ ९६ ॥

टीका–जिनके सदा योगाभ्यासके व्यसनसें वशीभूत आत्मा अरु मनकी अविछिन्नमैत्री वर्त्तें हैं तिनयोगीजनके प्रिय स्त्रियोंके संभाषण और अधरामृत स्वासोंकी सुगंधसहित मुखचंद्र और कुचकलशोंकों हृदयमें लगाकर सुरतसें क्या प्रयोजन॥९६॥

किं कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदंड-
झङ्कारितैरेरे कोकिल कोमलं कलरवं
किं त्वं वृथा वल्गसे ॥ मुग्धे स्निग्ध
विदग्धमुग्धमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं
वर्तते ॥ ९७ ॥

टीका–अरे कामदेव अपने धनुषके टंकारव शब्दसें मेरेकों काहेकों त्रास देता अरे कोकिल कोमल मधुरशब्दसें क्या वृथा बोलता है और हेस्त्रि प्रेम अरु चतुराईसें भरे ऐसे सुंदर मधुर कटाक्ष काहेकोंचलाती

क्योंकि अब मेरा चित्त (चंद्रचूड) शिवजीके चरणनके ध्यानामृतमें लगरहा है ॥ ९७ ॥

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं
तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत् ॥ इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनदृशां समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि
ब्रह्म मनुते ॥ ९८ ॥

टीका—जब मेरेअंदर कामदेवरूपी अंधकारसें उत्पन्न हुवा अज्ञान था तबतक तो मेरेकों सबजगत् स्त्रीमय दीखपडताथा अरु अब सुंदर विवेकरूपी अंजन लगानेसें मेरी दृष्टिसमहोगई तिस्सें सब जगत् ब्रह्ममयदीख पडता है

वैराग्ये संचरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ॥ शृङ्गारे रमते कश्चिद्भुवि भेदाः
परस्परम् ॥ ९९ ॥

टीका—कोइ पुरुष वैराग्यमें संचार कर्त्ता है और कोई पुरुष नीतिमें प्रवर्त्तता है और कोई पुरुष शृंगारमे रमता है ऐसे मनुष्योंमें इछाका अनेकभेद है इससें भर्तृहरिजीने तीन प्रकारके मनुष्योंके लिये यह तीन शतक बनाये हैं ॥ ९९ ॥

इति सुविरक्तप्रशंसा

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्यास्पृहा मनोज्ञेऽपि ॥
रमणीयेऽपि सुधांशौ नमनः कामः सरोजिन्याः॥१००॥

टीका—जो पदार्थ जिनकों अछा नहिलगे तो वह पदार्थ सुंदर है तथापि उसीमे वांछा नहिं होती अत्र दृष्टांतः जैसें चंद्र सबके प्रिय हैं परंतु सूर्यविकासी कमलनीके मनकों प्रीति नहि होती अर्थात् जो जिनकों अछालगे उसीमे प्रीति होती है ॥ १०० ॥

॥ इति योद्धपुरीय ऋषभदत्तशास्त्रिविरचिता
भर्तृहरिकृत श्रृंगारशतकस्य भाषाटीका
संपूर्णा ॥ २ ॥

॥ इति श्रृङ्गारशतकं सटीकं संपूर्णम् ॥

अथ भर्तृहरिकृतं ।

वैराग्यशतकम् ।

श्रीगणेशाय नमः ॥

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्त्तये॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

टीका–दशोदिशा और तीनकाल भूत भविष्यत् अरु वर्त्तमान इसके बीचमें कबी नाश नहि होता ऐसा अनंत चैतन्यमूर्त्ति अरु आपहीके अनुभवयुक्त शांतस्वरूपी है तेज जिनका ऐसे ब्रह्मस्वरूपकों मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताःप्रभवःस्मयदूषितः
॥ अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे
सुभाषितम् ॥ २ ॥

टीका–जगत्में जो विद्वान् हैं वह तो मत्सरभावसें युक्त होके मेरेगुणको कछु पूछते नहि और धनवान् हैं वह धनके मदसें गुणकों पूछते नहि और शेषरही वह अज्ञानयुक्त हैं गुणमें कछु समझता नहि इस्सें मेरागुण मेरेहि अंगमें जीर्णहोगया ॥ २ ॥

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे
विमृशतः॥महद्भिःपुण्यौघैश्चिरपरिगृही
ताश्च विषया महान्तो जायन्ते व्यसनमिव
दातुं विषयिणाम् ॥ ३ ॥

टीका–संसारजनित चरित्रकों में सुखरूप नहि देखताहों और पुनीत कर्मोंका फल स्वर्गादिकभि

विचारकरतां मेरेकों दुःखरूपही दीखता है क्योंकि पुण्यक्षीणभये स्वर्गसें पतनहोजाता है और मोटे पुण्यके समूहसें चिरकालसें संचेहुवे विषयभि अंत समय विषयी पुरुषनकों दुःखरूपहोजाते हैं ॥ ३ ॥

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता
गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृ-
पतयो यत्नेन संतोषिताः ॥ मन्त्रा-
राधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने
निशाः प्राप्तः काणवराटकोऽपि न
मया तृष्णेऽधुना मुञ्च मां ॥ ४ ॥

टीका—धनकी शंकाकरके पृथ्वीकों खननकरी ओर पर्बतकी धातुगेरु आदिक रसायणकरनेके लिये बहुतसी धमाई और नदीयोंकापति समुद्रकों रत्नादिकनकी इछाकरकें तिरके पारगया और बडेयत्नसें राजाकोंमि प्रसन्नकरा और मंत्रसिद्धकरनेके लिये मन लगाकर रात्रिओं श्मशानमें वितीत करी इतने कामकरनेसें मेरेकों एक काणी कपर्दिकाभि न मिली तो इसकारणसें हे तृष्णे अब तो मेरेकों छोड ॥ ४ ॥

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न
किंचित्फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमान-

मुचितं सेवा कृता निष्फला ॥ भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशंकया काकवत्तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ५ ॥

टीका—पर्व्वत अटव्यादिकनसें विषम ऐसे अनेक देशोंमें भ्रमणकरा तथापि मेरेकों कछुफल नहिमिला और जाति कुलके योग्य अभिमानकों छोडके नीचनकी सेवाकरी वोभि निष्फलगई और मानछोडके परायेघर काकवत् शंकासहित भोजनकरा हेतृष्णे दुर्मति पापकर्ममें प्रवर्त्तनेवाली तेरे लिये मैनें इतना कामकिया अबतक तूं संतोष नहि पकडती ॥ ५ ॥

खलोल्लापाः सोढा कथमपि तदाराधनपरैर्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ॥ कृतश्चित्तस्तंभः प्रहसितधियामञ्जलिरपि त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥ ६ ॥

टीका–(खल) दुष्टनके कठिन बचन रेनीच रेमंद इत्यादि तिनकी सेवायुक्तहोके हमनें सहनकर और नीचनके वचनसें आंसु आणेलगे उसकों रोकके शून्यमनसें हास्यकरा और मेरेकों दीनदेखके हसने-

लगे उन्होंके आगे चित्तकों रोकके हाथ जोड नमस्कारकरा तथापि हेआशे व्यर्थ आशाकरनेवाली इतने काम तो मेरे पास कराया अब फिर क्या नचाती है॥६

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते
जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः
कालो न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्म जरा-
विपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा
मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्

टीका–सूर्यके उदय अस्त होनेसें जीवितक्षीण होता है और बहुतसे कार्योंकर भारी ऐसे व्यापारोंसे काल व्यतीत होता है उसकों मैंने नहि जाना और सबनका जन्म जरा विपत्ति और मरण देखके त्रास भय नहि होता अत्रहेतुः मोहसहित प्रमादरूपी मदिराकों पान करकें सब जगत् (उन्मत्त) कार्याकार्यविचारशून्य होगया है ॥ ७ ॥

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्ट-
जीर्णाम्बरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा
दृश्येत चेद्गेहिनी ॥ याञ्चाभंगभयेन
गद्गदलसत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं कोदेहीति
वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वीजनः

टीका–दीनोंसेंभि दीन हैं मुख जिनका ऐसे बालक जिस स्त्रीके फटे वस्त्रोंकों खींचते हैं और अन्नकेलिये रोतेहुये गृहके मनुष्योंसेयुक्त ऐसी स्त्री जो घरमें न होती तो ऐसा कौन धीर मनुष्य है सो अपना उदरभरणेके लिये याचनाकीयेंभि ना कहनेवालोंके आगे देही इसवाणीकों कहै अर्थात् स्त्रीकेलिये सबहोता है

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबुहुमानो विगलितः ॥
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो
जीवितसमाः ॥ शनैर्यष्ट्योत्थानं
घनतिमिररुद्धे च नयने अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥ ९ ॥

टीका–विषयभोगकी इछा निवृत्तभई और लोकोंमे अपना मानभि घटा और समानवयवालेभि मरगये और जो इष्टमित्र थे वोभि मरनेवाले हैं और आप लकडीके आधारसें ऊठता है और नेत्रोंमे अंधेरी आरही है तथापि अहो इत्याश्चर्ये यह धीट काया अपना मरण सुनके चकित होती है ॥ ९ ॥

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः
सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥ संसारा-

र्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ १० ॥

टीका—विधाताने हिंसारहित अरु यत्न विनामिलै ऐसी वायुभक्षणरूप जीवीका सर्पोंके लिये बनाई और पशु ऐसे रचे जो तृणभक्षण करै और भूमिशयनकरै और जिनकी बुद्धि संसार समुद्र लंघनेंकों समर्थ है उन मनुष्योंकी वृत्ति ऐसी बनाई कि जिसके खोजमें सबगुणसमाप्तिहोजाय परंतु वह वृत्ति सिद्ध नहोय१०

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥ नारीपीनपयोधरोरुयुगुलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥

टीका—संसार निवृत्तिके लिये विधिपूर्वक ईश्वरके चरणकमलका ध्यान नहि किया और स्वर्गके द्वार खोलनेमें समर्थ ऐसा धर्मकाभि सेवन नहिकिया और नारीके पुष्ट कुच अरु दोनूं जंघाका स्वप्नमेंभि अलिंगन नहिकिया इस्सें हम माताके यौवनरूपी वन काटनेके हेतु केवल कुहाडेही उत्पन्नभये हैं ॥ ११ ॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥ कालोन यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥ १२ ॥

टीका—विषयभोगकों हमनें नहि भोगा किंतु विषयोंने हमारेकों भोग लिया और तप कृच्छ्रचांद्रायणादिक हमने नहि करा किंतु हमही तपायगये और कालतो व्यतीतनहुवा परंतु हमारी वय व्यतीतहुई और तृष्णातो जीर्णनहुई परंतु हम तो जीरनहोगये १२

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशान्नतप्तं तपः ॥ ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोः पदं तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितम् ॥ १३ ॥

टीका—घरमें उचित भोजनादि सुख रोगादि परवशसें सहनकरा परंतु क्षमाकरके सहन नहि करा और त्यागभिकरा परंतु संतोषसें त्याग नहिकरा और दरिद्रीपणेसें (तप) अग्निका तपकरा परंतु शास्त्रोक्त तप नहिकरा और निरंतर धनका ध्यानकरा परंतु

प्राणरोकके शंभुकेपदका ध्याननहिकरा इसरीतसें जो जो मुनि कर्म करते हैं ऐसे कर्म हमनेभि करा परंतु तिन तिन कर्मोंके फलसें ठगायगये ॥ १३ ॥

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकितं शिरः ॥
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १४ ॥

टीका–मुखके तो सलपडरहे हैं और मस्तकके केश धवले होगये हैं और सब अंग शिथिल होगया है तथापि एक तृष्णा तरुणहोती जाती है ॥ १४ ॥

येनैवाम्बरखंडेन संवीतो निशि चन्द्रमाः ॥
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥ १५ ॥

टीका–जिन स्वल्प वादलके खंडसें रात्रीका चंद्रमा वेष्टित है उसी खंडसे दिनमें सूर्यभी वेष्टित है इन दोनोंमेंभि ऐसी दीनता आजाती है तो क्या अपना अभिमान करना ॥ १५ ॥

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः स्वयं त्यक्त्वा

ह्येते शमसुखमनन्तं विदधाति ॥१६॥

टीका–बहुतकालतक विषयभोग किये तथापि वह अवश्य जानेवाले हैं सो जावेहीगा तो उनके वियोगहोनेमैं क्या संशय रहा तो जिनको यह मनुष्य आप पहिलेही छोडे क्योंकि जो वह आपसैंहि त्यागके जायगें तो मनको बडा संतापहोयगा इस्सें आपहि विषयकों त्यागकरनेसें महासुखकों प्राप्तहोगा ॥ १६ ॥

॥ तृष्णाधिकारमाह ॥

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा परिष्वंगे तुंगे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥ जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणस्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १७ ॥

टीका–जब विवेकके प्रकाशसें शांतिका उदय होता है तब तृष्णाभि शांत होजाती है और अधिक विषयके संसर्गसे वही तृष्णा बहुतसी फैलजाती है जिस तृष्णाकों ४९ मरुद्गणोंका अधिपति इंद्रभि त्यागनहिकरसकता इस्सें तृष्णा अधिक है ॥ १७ ॥

॥ विषयाणामधिकारमाह ॥

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं शय्या

च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमलीनकन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजंति १८

टीका—भिक्षामांगके खाना वोभि नीरस एकबार और सोनेकों केवल भूमि और कुटुंब देहमात्र और जीर्ण वस्त्र और सो टुकडेकि गूदडि पहिरनेकों ऐसी दशा प्राप्त है तथापि बडाआश्चर्य है कि विषय उनकों त्याग नहि करतें ॥ १८ ॥

॥ रूपतिरस्कारमाह ॥

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्यु-
पमितौ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च श-
शांकेन तुलितम्॥ स्त्रवन्मूत्राक्लिन्नं करि-
वरकरस्पर्धि जघनमहो निन्द्यं रूपं
कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ १९ ॥

टीका—अहो इति आश्चर्ये स्त्रियोंके निंदनीक रूपकों कविजनोंने कैसाबढाया है स्त्रियोंके स्तन मांसकी ग्रंथिहैं उनकों कनक कलशकी उपमादेते हैं और मुख थूकका घर है उसें चंद्रमाकी तुल्यकहते हैं और करते हुवे मूत्रसें भीनी जांघोंको श्रेष्ठ गजके शुंडासमान कहते हैं ॥ १९ ॥

अजानन् माहात्म्यं पततु शलभो दी-
पदहने स मीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुतम-
श्नातु पिशितम्॥ विजानन्तोऽप्येते
वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः
कामानहह गहनो मोहमहिमा॥ २०॥

टीका—देखो पतंग दीपके अग्नीकी शिखामें आय-गिरता है परंतु यह नही जानता है कि मैं नष्ट हूंगा और मछली कंटकके लगे हुवे मांसको गिलती है वहभि नहि जानती कि इस्सें मेरे प्राणजांयगे ऐसे नहि जाननेवाले यह तोदोनों मूर्ख हैं परंतु हमलोक इस जगत्में जानबूझके विषयोंकिअभिलाषा नहि त्यागते हैं यह महामोहकी महिमा अति कठिन है॥ २०॥

अथ दुर्जनमुद्दिश्याह।

बिसमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च॥
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम्॥

टीका—फल बहुतसे भोजनके लिये हैं और स्वादुजल पीनेके लिये है और पृथ्वीतल शयन करनेकों है भोजपत्र पहिरनेके लिये है ऐसे सब छते

पदार्थ हैं तो नवीन उपार्जित धनरूपी मदिरापानसें मत्त इंद्रियोंवाले दुर्जनोंका (अविनय) निरादर हम क्यों सहैं ? ॥ २१ ॥

मानितामुद्दिश्याह ।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पु-
रा विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं
यथा ॥ इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्च
तुर्दश भुञ्जते कतिपयपुरस्वाम्ये पुं
सां क एष मदज्वरः ॥ २२ ॥

टीका—कितनेक धन्य महात्मा पुरुष ऐसे भये जिनोंने जगत्कों उत्पन्न करा और कितनेक ऐसे हुए जिन्होंने जगत्कों धारणकिया कोई ऐसे हुए जिन्होंने जगत्कों जीतकें तृणतुल्य समझके औरोंकों देदिया और इसजगत्में कितनेक ऐसे हैं कि १४ भुवनका राज्य कर्त्ते हैं तो देखो अब थोडीसी ठकुराई पायके लोकोंको अभिमान आता है यह बडा आश्चर्य है ॥ २२ ॥

निःस्पृहाणामधिकारमाह ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभि
मानोन्नताः ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि

कवयो दिक्षु प्रतन्वान्ति नः॥इत्थं मानद
नातिदूरसुभयोरप्यावयोरन्तरं यद्यस्मा
सुपराङ्मुखोऽसिवयमप्येकान्ततोनि
स्पृहाः ॥ २३ ॥

टीका–हेनरेंद्र तुम राजा हौ तो मैंभि गुरुकि सेवा करके बुद्धिमान् हौं अरु उच्च पदकों प्राप्त हुआहौं और तूं यदि धनसें प्रसिद्ध है तो हमारी विद्याका यश कविलोग देशांतरमें वर्णनकर रहे हैं इस रीतिसें विचार कर्त्ते तेरे मेरे कछु अंतर नहि तथापि तूं मेरेसें मुख फेरके रहता है तो हम तुमसें अधिक निस्पृह हैं ॥ २३ ॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृ
पशतैर्भुवस्तस्या लाभे कइव बहुमानः
क्षितिभुजाम् ॥ तदंशस्याप्यंशे तदव-
यवलेशेऽपि पतयो विषादे कर्त्तव्ये वि
दधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ २४ ॥

टीका–इस पृथ्वीकों अपनी अपनी मानके सैंकडों राजा चलेगए उनसें यह भोगी न गई तो इसके लाभ होनेसें राजाकों क्या अभिमान करना चाहियै अबतो उसके अंशके अंश तिनकेभि अंश अर्थात्

T

किंचित् पृथ्वीके खंडकों पायके अपनेकों भूपति मानते हैं तो देखो जो बात सोच करने योग्य है उसमें मूर्खलोग उलटे आनंदहि मानते हैं यह बडा आश्चर्य है ॥ २४ ॥

मृत्षण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽ
प्ययं न त्वणुरंगीकृत्य स एव संयुग
शतै राज्ञां गणैर्भुज्यते ॥ तद्दद्युर्ददते
ऽथ वा न किमपिक्षुद्रा दरिद्रा भृशं
धिक् धिक् तान्पुरुषाधमान्धनकणं
वाञ्छान्ति तेभ्योऽपिये ॥ २५ ॥

टीका—यह पृथ्वीका समूह पानीकी रेखासें बलयाकार हुवा है पहिले आपही सब छोटासा है तिसीकों सैकडां राजा लडाइयां कर करके अपना अपना भाग बांटके किसी प्रकारसें भोगते हैं ऐसे क्षुद्र और दरिद्रकों जो बडे दानी कहाते हैं अबभि देखें दान कर्त्ते हैं या नही यों कहकहके उस्सें धनके कणिकाकी वांछा करते हैं तिन अधम पुरुषोंकों धिक्कार है ॥ २५ ॥

दुर्भगसेवकस्य वाक्यमाह ।

न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्ध

बुद्धयः॥नृपसद्मनि नाम के वयं कुच
भारानमिता न योषितः ॥ २६ ॥

टीका—नही तो हम नट हैं नहि हम परस्त्रीलंपट हैं नहि हम गायक हैं नहि हम परद्रोहकारक कूठेलबार हैं और नहि हम बडे २ स्तनवालि स्त्री हैं राजाओंके घरमें मेरेकों कोन पूछै ॥ २६ ॥

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै वि
षयिणाम् ॥ इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितित
लभुजः शास्त्रविमुखानहो कष्टं सापि
प्रतिदिनमऽधोधः प्रविशति ॥ २७ ॥

टीका—पहिले तो यह विद्या पंडितोंके क्लेशनिवृत्तिकरनेके लिये थी फिर पीछे कितनेक कालसें विषयी लोगोंके विषयसुखसिद्धि होनेके लिये भई अरु अब इस समयमें राजाओंको शास्त्रमें विमुख जानकर वह विद्या प्रतिदिन नीचेसें नीचे चली जाती है यह बडा कष्ट है ॥ २७ ॥

साहंकारं पुरुषमुद्दिश्याह ।

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि
धवलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकार

विषये॥ नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः
कैश्चिदधुना महद्भिः कः पुंसामयम
तुलदर्पज्वरभरः ॥ २८ ॥

टीका—पहिले तो ऐसे पुरुष हुए कि जिनके उज्वल मस्तककि माला शिवजी कंठके आभूषण करके धारते अब देखो अपने प्राणपोषण करनेवाले कितनेक मनुष्योंसें प्रतिष्ठापायकर कैसे अभिमानके ज्वरसें भारी हो रहेहैं ॥ २८ ॥

अर्थानामीशिषेत्वं वयमपि च गिरामी
श्महे यावदित्थं शूरस्त्वं वादिदर्प्पज्व
रशमनविधावक्षयं पाटवं नः ॥ सेवन्ते
त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि
श्रोतुकामामय्यप्यास्थावचेत्तत्त्वयिमम
सुतरामेषराजन्गतोस्मि ॥ २९ ॥

टीका—हे राजन् तुम धनके ईश्वरहो तो हम वाणीके ईश्वर हैं और तुम शूरवीरहो तो हम वादी पुरुषोंके अहंकाररूपी ज्वरको मिलानेकों अछे चतुर हैं और तुमकों धनाढ्य पुरुष सेवनकर्त्ते हैं ऐसें मेरेकोंभि बुद्धिके मलनिवृत्तिके लिये शास्त्रके सुननेवाले सेवत हैं हेराजन्तुमारी आस्ता श्रद्धामे-

रेमें नहि हैं तो हमारी श्रद्धा तुमारेमें किंचित्भि नहि है अब हमजाते हैं ॥ २९ ॥

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः
समभवं तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलि
प्तं मम मनः ॥ यदा किंचित् किंचिद्
बुधजनसकाशादवगतं तदा मूर्खो
ऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ३०

टीका–जिस्समय मैं अल्पज्ञ रहा तब हाथीके समान मदांधथा अरु मेरे मनमें ऐसा गर्वथा कि मैं सर्वज्ञहूं और जब मुझें पंडितोंसे कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त हुवा तब मैंनें जानाकि मैं मूर्खहूं तब मेरा वह मद-ज्वरकि माफक उतरगया ॥ ३० ॥

निमर्मतास्वरूपमाह ।

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसु-
भगोभ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह
संसारसरणौ ॥ इदानीं स्वःसिन्धोस्तट-
भुवि समाक्रन्दनगिरः सुतारैः फूत्कारैः
शिव शिव शिवेति प्रतनुमः ॥ ३१ ॥

टीका–यौवनावस्थासें शोभित जो स्त्री उनके भोगनेमें मनोज्ञ यौवनका काल सो तो बीतगया और

चिरकालतक इस संसारके मार्गमें भ्रमते २ हम थकगये अब तो श्रीगंगाजीके तटपर स्त्रियादिकनकी निंदा कर्त्तें हुये हम शिव शिव शिव ऐसे जपकरेंगे ॥

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि
व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे बन्धुजने ग-
ते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ॥ युक्तं के-
वलमेतदेव सुधियां यज्जन्हुकन्यापयः
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः
क्वचित् ॥ ३२ ॥

टीका—अब मान भंगहुये और द्रव्य नाशहुये और याचकजन आयके बिमुखहोय फिर पीछे जानेलगे और स्त्री पुत्र भाइ अरु संबंधी आदि भ्रष्ट होगये और यौवनावस्था शनैः २ नाशभई तब बुद्धिमान् पुरुषोंकों यह उचित है कि श्रीगंगाके जलसें पवित्र हैं पाषाण जिनके ऐसे पर्वतकी कंदराके समीप दरी और कुंजमें कहीं निवासकरैं ॥ ३२ ॥

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहु
हा प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय क्ले-
शकलितम् ॥ प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वय-
मुदितचिन्तामणिगुणे विमुक्तः संकल्पः

किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥ ३३ ॥

टीका–हेहृदय तुम पराया चित्त प्रसन्न करणेकों क्या प्रसाद लेनेके हेतु क्लेशसें मलिनहोता हुवा घुसता है सर्व संकल्प अर्थात् तृष्णा छोडकर अपनेहीमें प्रसन्न होकर चिंतामणि कैसेगुण प्रगटकरेगा अर्थात् शांति संतोषादि गुण ग्रहण करेगा तो क्या तेरी अभिलाषा पूरी न होगी ॥ ३३ ॥

अथ भोगपद्धतिः ।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृ-
पालाद्भयं मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं
रूपे जराया भयम् ॥ शास्त्रे वादभयं
गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्वं
वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमे-
वाभयं ॥ ३४ ॥

टीका–भोग भोगवनेमें रोगकाभय, कुलके बढनेमें मरणकाभय, धनहोनेमें राजाकाभय, मौनहोनेमे दीनताकाभय, बल पराक्रममें शत्रुकाभय, रूपमें जराआनेकाभय, शास्त्र पढनेमें वादीयोंका भय, अच्छे गुणमें दुर्जनकाभय, शरीरमें मृत्युकाभय ऐसे पृथ्वीपर मनुष्योंके सब वस्तु भययुक्तही दीखपडती हैं केवल वैराग्यही अभयस्थान है ॥ ३४ ॥

T

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रप
पयसां कृतं किन्नास्माभिर्विगलितविवे
कैऽर्यवसितम् ॥ यदाढ्यानामग्रे द्रविण
मदनिःशंकमनसां कृतं वीतव्रीडैर्निज
गुणकथापातकमपि ॥ ३५ ॥

टीका—कमलनीके पत्रपर जलके बिंदु रहैं तद्वत् चंचल इस प्राणोंके लिये विवेकरहित हमनें क्या उद्यम नहिकरा धनके मदसें मदांध लोगोंके निकट अपना गुण कथनकरना यह पाप निर्लज्जहोके किया

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः साम
न्तचक्रं च तत्पार्श्वे तस्य च सापि रा
जपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ॥ उद्रिक्तः
स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः
कथाः सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं
कालाय तस्मै नमः ॥ ३६ ॥

टीका—हेभ्रात अहोकष्ट क्या कष्ट है पहिले इस नगरीमें कैसा उत्तम राजाथा फिर उसके कैसे सामंत योद्धाओंका समूहथा और उसीके पास कैसी राजसभाथी और चंद्रमुखी स्त्रियां कैसी शोभायमानथीं और राजाके पुत्रोंका समूह कैसाथा कैसे बंदिजनथे

अरु कैसी अछी कथा कहतेथे यह सब कालकेवशहोगये तो उसकालकों मेरा नमस्कार है ॥ ३६ ॥

पुनः कालमुद्दिश्याह ।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः ॥ इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥ ३७ ॥

टीका—जिस्सें हम जन्मेथे वह तो निश्चेकर वहुतकालसें मरगये और जिनके संग हम बढेथे वहभि मरगये अब हमभि दिन दिन सबनकों मरतेदेखकें वालुका नदीके तटके वृक्षके तुल्य दशाकों प्राप्तहोरहे हैं अर्थात् मृत्यु नजीक है ऐसी संसारकी अवस्था है

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ॥ इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः ॥ ३८ ॥

टीका—जिस घरमें अनेकथे वहां एक दृष्टपडता है और जहां एकथे वहां अनेकदीखपडैं फिर अंतमें

एकही नरहै इसरीतसें रात्रि दिवसरूपी दो पाशों कों चलाके संसाररूपी चोपडके बीचमें यह काल अपनि कालरात्रिरूप शक्तिसें क्रीडाकर्त्ता है ॥ ३८ ॥

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणोदर्कान् दारानुत परिचरामः
सविनयम् ॥ पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतविविधकाव्यामृतरसान्न विद्मःकिं कुर्मः
कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ३९ ॥

टीका—तप कर्त्तेहुए गंगाकी तटपर वसैं अथवा गुणवान् स्त्रीके संग प्रेमसहित विचरैं अथवा काव्यामृतके रससहित शास्त्रके समूहकों पानकरैं अर्थात् अत्यादरसें सुनें इस निमेषमात्र आयुष्यवाले देहकों देखकें हमकछु नहि जानसकते कि क्या करैं ॥३९॥

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां
गतस्य ॥ किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र
ते निर्विशंकाः संप्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः
शृंगकंडूविनोदं ॥ ४० ॥

टीका—जब हम गंगाकी तीर हिमाचलकी शिलापर पद्मासन लगाकर बैठेंगे और ब्रह्मज्ञानके अभ्यासकि

विधिसें आंख मूंद योगनिद्रामैं प्राप्तहोंगे उस्समय निशंकहोके वृद्धहरिण हमारी देहमें रगडके अपनें शृंगकी खुजलि मिटावेंगे ऐसे अछे दिन मेरेकबहोंगे

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्तवचसा कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पप्लुतदृशा ॥ ४१ ॥

टीका—जहां प्रकाशितहोके फैली ऐसी चांदनीसे उज्वल ऐसे श्रीगंगाजीके कोई एकांत तटपर सुखसें बैठें अरु ध्वनि बंदहोय तब रात्रीके समें संसारके दुःखोंसे व्याकुलहोके और आनंदके नेत्रोंमे आंसु आरहे हैं ऐसेहोके शिव शिव शिव शब्दकों आर्त्तस्वरसैं उच्चारणकरैं ऐसी मेरी अवस्था कबहोयगी ॥

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ४२ ॥

टीका—महादेव एक देवहैं गंगाही नदी है गुफा-

हिघर है दिशाहि वस्त्र है कालही मित्र है किसीसेंदीनं नहोना यहि व्रत है और क्या जादा कहैं वटका वृक्षहीं वल्लभा स्त्री है ॥ ४२ ॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा
तरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी ॥ मोहावर्त्तसुदुस्तराऽ
तिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटीतस्याःपार
गता विशुद्धमनसो नन्दान्ति योगीश्वराः

टीका—आशानाम एक नदी है उसमें मनोरथरूपी जल भरा है और तृष्णा रूप तरंगोंसे पूर्ण है और राग प्रीतहि उसमें मगर हैं और नानाप्रकारकी तर्कना पक्षी हैं और धैर्यरूप वृक्षकों नाशकरनेवाली है और मोहरूपी भ्रमरसैं किसीसें तिरीनजाय ऐसी कठिन है और बडी चिंतारूप जिनकें दोयतट हैं ऐसी नदीकों तिरकें पारहोनेवाले शुद्धमन सहित योगी आनंद पाते हैं ॥ ४३ ॥

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात
तादृङ्नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मा-
गतो वा ॥ योऽयं धत्ते विषयकरिणी-
गाढगूढाभिमानाःक्षीबस्यान्तःकरणक-

रिणः संयमालानलीलां ॥ ४४ ॥

टीका–हेतात जबसें यह संसार प्रवृत्तहुवा वहाँसे आजतक हम त्रिभुवनकों खोजते फिरते हैं परंतु ऐसा पुरुष मेरे देखनेमैं तथा सुननेमैं न आया जो विषयरूपी हथनीमें अहंकार युक्त मन अरु अंतःकरणकों रोकके राखै ॥ ४४ ॥

सांप्रतं निर्वेदतायाःस्वरूपमाह ।

ये वर्द्धते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः ॥ तेषामन्तःस्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं ध्यानच्छेदेशिखरिकुहर ग्रावशय्यानिषण्णः ॥ ४५ ॥

टीका–जो दिन धनवानोंके आगल याचनाके दुःख सहनेवालोकों मोटे दीखतेहै और विषयाक्षेपसें विपरीतबुद्धिवालोंको छोटे दीखते हैं उसदिनोंकों हम अंतःकरणमैं हसकर ध्यानसें विश्रामपाकर पर्बतकी कंदरामैं पत्थरकी शय्यापर बैठेहुए स्मरणकरेंगे

विद्या नाधिगता कलत्ररहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसापित्रोर्नसम्पादिता ॥ आलोलायत

लोचनायुवतयःस्वप्नेपि नालिङ्गिताका
लोयंपरपिण्डलोलुपतयाकाकैरिव प्रेरितः

टीका–(कलंक) दोषरहित विद्या हमने नहि पढी और धनभि उपार्जन नहिकरा और एकाग्रचित्तसैं मातापिताकी सेवाभि न करी और चपल विशाल नेत्रकी धरनेवाली स्त्रियोंका स्वप्नमें आलिंगन नहिकरा अरु पराये ग्रासका लोभ कर्त्तेहुवे हमनें काककीपरे सब समय हमनेयोंहि विताया ॥ ४६ ॥

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिग
तीः ॥ वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्र
किरणैस्त्रियामां नेष्यामो हरचरणाचित्ते
कशरणाः ॥ ४७ ॥

टीका–सर्वस्व नष्टहोनेपर बहुतसी करुणासें पूर्ण त्हदयवाले और संसारमें जितनी वस्तु है उन सबनकों गुणरहित स्मरणकर्त्ते हुए और शिवके चरणमें लगे हुवे चित्तकों अपना रक्षक समझकर शरदऋतुको चांदनीमें किसी पवित्र वनमें बैठहुवे हम कब रात्रीको व्यतीतकरेगे ॥ ४७ ॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च ल

क्ष्म्या सम इह परितोषो निर्विशेषाव
शेषः ॥ स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः ॥ ४८ ॥

टीका—हेराजन् हम वृक्षकी छाल पहिरके संतुष्ट हैं तुम धनसे संतुष्ट हो जब तुमारी हमारी तुष्टि समानहुई वोही दरिद्री है जिनके तृष्णा अधिक अरु जिनके मनमें संतोष है फिर कौन दरिद्री कौन धनवान्

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥ मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृशन्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्यतपसः ॥ ४९ ॥

टीका—जो यह स्वाधीन विचरना अरु विना याचे भोजन करना और सहाय करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषोंके संग रहना और वैराग्य रूप है फल जिनका ऐसे शास्त्रका श्रवण करना और कल्पना रहित मनसें चिरकाल स्मरणकरना यह इतनी वस्तु प्राप्त होना मैं नहि जानता हूं कि कौन पूर्वकृत श्रेष्ठ तपस्याका फल है ॥ ४९ ॥

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषां निःसंगताङ्गीकरणपरिणतिःस्वात्मसन्तोषिणस्ते धन्याःसंन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकरा कर्मनिर्मूलयन्ति ॥ ५० ॥

टीका–जो आपके कर्मोंका नाश कर्त्ते हैं वही पुरुष धन्य हैं फिर वह कैसे हैं कि हाथही पात्र हैं और भ्रमण करनेसें मिली ऐसी भिक्षाका अन्न खाते हैं और विस्तीर्ण आकाशरूपी वस्त्र है और विशाल पृथ्वीरूप शय्या है और परिणाममें असंग रहनेंकों स्वीकार कर्त्ते हैं और जिन्होंने दीनताके समूहकों त्याग करा है ऐसे हैं ॥ ५० ॥

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः ॥
जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगतिविदुषोऽन्यत्र तपसः ॥ ५१ ॥

टीका–स्वामीकी सेवा अति कठिन हैं और राजा घोडेके समान चंचल चित्तवाले हैं अरु हम मोटी

इच्छावाले हैं फिर महत्पद जो मुक्तिलक्षण तिनमें मन बंधाहुवा है और देहकी अवस्था वृद्ध है और सब जीवनकों मृत्यु हरलेती है इस्सें हे मित्र ज्ञानवान् पुरुषकों जगत्के बीचमें तप करने सिवाय और कल्याणकारी रस्ता दूसरा नहीं है ॥ ५१ ॥

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामि
नीचञ्चला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटली
लीनाम्बुवद्भंगुरम् ॥ लोला यौवनलाल
ना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे धै
र्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विधद्ध्वंबुधाः

टीका—हे पंडितजनो देहधारियोंका भोग तो मेघके बीचमें चमकती हुई बिजलीके समान चंचल है और वायुसें छिन्नभिन्न मेघके जलसमान आयुष्य नाशवान् है और यौवनका उमंगभि थिर नही है ऐसा समुझकर धैर्य समाधीकी सिद्धिमै सुलभ योग है यामैं बुद्धिधारण करो ॥ ५२ ॥

पुण्ये ग्रामे वने वा महतिसितपटच्छन्न
पालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विजमु
खहुतभुग्भूमधूम्रोपकण्ठम्॥द्वारं द्वारं प्र
वृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो मा-

नी प्राणी स धन्यो न पुनरनुदिनं तुल्य
कुल्येषु दीनः ॥ ५३ ॥

टीका—पवित्र ग्राम अथवा पवित्र बडे वनमें उज्वल वस्त्रसें ढकाहुवा ठीकरा लेकें क्षुधा पीडित मानी पुरुषको उदर पूर्त्तिके लियें न्यायशास्त्र पठित ब्राह्मणोंकी होमीहुई अग्निके धूमसें मलिन ऐसें द्वार द्वारपे भ्रमण करना अच्छा परंतु समान कुलवालोंके बीचमें दीन होके रहना अच्छा नही ॥ ५३ ॥

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रो
ऽथ किं तापसः किंवा तत्वनिवेशपेशल
मतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥ इत्युत्प
न्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा
जनैर्नक्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो या-
न्ति स्वयं योगिनः ॥ ५४ ॥

टीका—यह चांडाल है अथवा ब्राह्मण है वा शूद्र है वा तपस्वी है वा तत्व विवेकमें चतुर बुद्धिमान् कोई योगीश्वर है ऐसें संदिग्ध अनेक प्रकारके लोक मार्गमें बोल रहे हैं तथापि योगीजन राग द्वेष रहित होके स्वछंद अपने मार्गमें चले जाते हैं ॥ ५४ ॥

सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्य

तिकरा वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषया
शीविषगताः ॥ शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवल
गगनाभोगसुभगां नयन्ते ये रात्रिं
सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥ ५५ ॥

टीका—हे सखे मित्र वनके बीचमें जायकें शरद ऋतुके चंद्रमाकी चांदनीसे श्वेत आकाशके बीचमें मनोहर रात्रियोंकों वितीत करै वह पुरुष धन्य हैं वह कैसे हैं कि तोडदिया है भवबंधनके क्षोभ जिन्होंने फिर मनमेंसें भयानक विषयरूप सर्प निकसगया है और पुण्यका समूह जिनके मनमें एक शरण है

एतस्माद्विरमेंद्रियार्थगहनादायासका
दाश्रयाच्छ्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्या
पारदक्षं क्षणात् ॥ शान्तं भावमुपैहि सं
त्यज निजां कल्लोललोलां गतिं मा भूयो
भज भुंगुरां भवरतिं चेतःप्रसीदाधुना

टीका—हे चित्त अब तूं प्रसन्न होके कृपाकर दुःखदायक इंद्रियांके अर्थसें निवर्त्तिहो और सकल दुःख ध्वंसकरनेसे समर्थ ऐसे कल्याणके मार्गकों शीघ्र सेवन कर और शांत भावकों प्राप्तहो और तरंगसी अपनी चंचल गतीकों छोड दे इस नाशवान् संसारी इच्छाकों फिर सेवन न कर ॥ ५६ ॥

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं
कुरुष्वाधुना भूशय्यानववल्कलैरकरणै
रुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥ क्षुद्राणामविवेक
मूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्या
ध्यविवेकविव्हलगिरां नामापि न श्रूयते

टीका—हे प्रिये प्रीति करनेवाली बुद्धि हम वनमें जाते हैं तूंभि ऊठ और पुनीत मूल फलादिकनसें अपना पोषण कर और वनीबनाई भूमि अरु नवीन वल्कलरूप वस्त्रोंसे निर्वाह कर क्यौंकि जिस वनमें गयें क्षुद्र अविवेकी और धनकी व्याधिके जनित अविचारसें जिनकी बुद्धि विकल है ऐसे धनवान्का नामभि नहि सुना जाता है ॥ ५७ ॥

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचू
डामणौ चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामा
सङ्गमङ्गीकुरु ॥ को वा वीचिषु बुद्बुदेषु
च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु
च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ५८

टीका—हे चित्त मोहकों दूरकर और जिनके शीशपे अर्द्ध चंद्रमा है ऐसे शिवजीसें प्रीति कर और गंगातटके वृक्षोंके नींचे विश्राम ले और इन सातों

पदार्थोंका विश्वास मतकर १ जलकी तरंगर २ और बुद्बुदे ३ बीजलीकीचमक ४ स्त्रीजातिं ५ अग्निज्वालाकीशिखा ६ सर्प ७ औरनदीका प्रवाह इनके विलासमें मत भूल ॥ ५८ ॥

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावशपरिणतिश्चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ५९ ॥

टीका–रेचित्त जो तेरे आगे अच्छे गवइये गीतगावैं और दक्षिणदेशकें सरसकवि दोनूं पसवाडे काव्य सुनाते होंय और पृष्टमें चंवर ढोलानेवाले स्त्रियोंके कंकणकी मधुर झणत्कार होतीहोय जो ऐसे सामग्री तुझें प्राप्त हो तो संसारके रसका स्वाद लेनेमें लंपटहो नहितो स्थिरसमाधिमें प्रवेश कर ॥ ५९ ॥

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात् क्षणभंगुरात्कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ॥
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥ ६० ॥

T

टीका—हे पंडितलोको स्त्रियोंके संगसें पैदाहुवे क्षणभंगुर सुखसैं विरामहो और मैत्री करुणा अरु प्रज्ञारूपी वधुसें संगकरो क्योंकि नर्कमें जब ताडना होगी उससमय हारोंसे भूषित स्त्रियोंके स्तनमंडल अरु शब्द सहित मणिमेखलायुक्त ऐसे स्त्रियोंके जघन कटितट तेरी सहायता न करेगी ॥ ६० ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावःपरेषाम्॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसामेषपन्थाः ॥ ६१ ॥

टीका—हेमन हिंसासे निवृत्ति होना और पराये धनहरणेका त्याग और सत्यबोलना और समयपर यथाशक्ति दानदेना और परस्त्रीकी बातसें मौनरखना और तृष्णाके प्रवाहका रोकना और गुरुका विनय करना और सबभूतप्राणीकी दयारखनी और सब शास्त्रके बीचमैं समानभाव रखना यही मुमुक्षु पुरुषोंका कल्याणकारी मार्ग है ॥ ६१ ॥

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षि-

णीमास्मं भूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहिवयं
का निःस्पृहणामसि ॥ सद्यः पूतपला-
शपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते भिक्षा-
सक्तुभिरेव संप्रति वयं वृत्तिं समीहामहे

टीका—हेलक्ष्मी मात अब तूं औरनको भज मेरी इच्छा मतकर क्योंकि विषयभोगके हम वांछक नहीं हैं निस्पृही विरक्त पुरुषोंके समीप तूं तुच्छ है हमतो हरे पलाश पत्रके पवित्र दोनेमें भिक्षाके सत्तूसें अपने जीवनकी वृत्तिकी इच्छा रखते हैं ॥ ६२ ॥

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः
किं जातमधुना मित्र येन यूयं वयं वयम्

टीका—हे मित्र तुमसोहि हम अरु हमसोहि तुम ऐसी अपनी आगल अभेदबुद्धि थी और अब तुमसो तुमीहौ हम हमी हैं ऐसी नवीन भेदबुद्धिभई ॥ ६३ ॥

बाले लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टि-
पाताः किं क्षिप्यंते विरम विरम व्यर्थं
एष श्रमस्ते ॥ संप्रत्यन्ये वयमुपरतं
बाल्यमास्था वनान्ते क्षीणो मोहस्तृण
मिव जगज्जालमालोकयामः ॥ ६४ ॥

टीका—हे बाला स्त्री लीलासें मींच २ कर मंद २

दृष्टिरूप बाण हमारेपर क्यौं फेंकती है अब विरामकर २ यह तेरा परिश्रम व्यर्थ है क्यौंकि अब हम और हैं वे नहि अब हमारी बाल्य अवस्था गयी और वनमैं रहनेका हमारा निश्चय है हमारा मोह क्षीण होगया और जगत्के जालकौं तृणके समान देखते हैं ॥६४॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदलप्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्यतिकरज्वल ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥ ६५ ॥

टीका—यह बालास्त्री मेरे ऊपर वार २ नीलकमलके दलकी कांतिसेंभि सुंदर नेत्रकों फेंकती है इसनें क्यासमझा है अब तो हमारा मोह गया और कामदेवके पुष्परूपी बाणोंके क्षोभसें पैदा हुई जलती अग्नीकी ज्वाला शांत होगइहै तथापि यह मूर्खणि नहि हटति ॥ ६५ ॥

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥
किं तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपांकुरच्छा

याचंचलमाकलय्य सकलं संतो वनांतं
गताः ॥ ६६ ॥

टीका–संतजनोंके रहनेके लिये क्यामहिल नथा और सुननेके लिये क्या उत्तम २ गाना न था और अधिक प्रीति करनेवाला प्राणप्यारी स्त्रीका सुख नथा अर्थात् यह सब था तथापि संतजन इस सकल जीवलोकको भ्रमते हुवै पतंगकी माफक और पवनसें हिलते हुवे दीपककी छायाकी माफक चंचल देखकें वनमें चले गये ॥ ६६ ॥

किं कन्दाःकन्दरेभ्यःप्रलयमुपगतानि
झरावागिरिभ्यःप्रध्वस्तावातरुभ्यः सर
सफलभृतोवल्कलेभ्यश्चशाखाः॥वीक्ष्य-
न्ते यन्मुखानि प्रसभमुपगतप्रश्रयाणां
खलानांदुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयवशपव
नानर्तितभ्रूलतानि ॥ ६७ ॥

टीका–पर्बतनकी कंदरासें कंद मूल क्या नाशहो गये हैं और पर्बतोंसे पानीके झरना क्या नाशहो गया है और वल्कलवाले वृक्षोंसे रस सहित फलवाली शाखा क्या ध्वस्त होगई अर्थात् न हुई तब संतजन बडे कष्टसें स्वल्प धन उत्पन्न हुवा तिनके

अभिमानंके पवनसें नाचती है भूलता जिनकी ऐसे अनुपम दुष्टनका मुख काहेकों देखते हैं अर्थात् खलोंके मुखका दर्शन त्यागकें सत्पुरुष पहाडोंमे क्यों न बसैं ॥ ६७ ॥

गङ्गातरंगकणशीकरशीतलानि वि
द्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥ स्था
नानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि य-
त्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः॥६८॥

टीका—गंगाके तरंगोंके अंबुकणसें शीतल हो रहे हैं और विद्याधरों करकें सेवित है शिलापट ऐसें हिमाचलके स्थानोंका क्या नाश होगया है ऐसे स्थान रहते तब मनुष्य अपमान सहित पराये ग्रासमैं रत क्यों होते ॥ ६८ ॥

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्नि-
निहतः समुद्राः शुष्यंति प्रचुरनिकर-
ग्राहनिलयाः ॥ धरा गच्छत्यन्तं धर-
णिधरपादैरपि धृता शरीरेका वार्त्ता
करिकलभकर्णाग्रचपले ॥ ६९ ॥

टीका—प्रलय कालकी अग्नीका मारा जब श्रीमान् मेरु पर्वत गिरपडता है और बडे २ मकर अरु

ग्राहोंके स्थान समुद्र सूकजाते हैं और पर्वतोंके पगसें दबीहुई पृथ्वी नाश होजाती है तो हस्तीके बच्चेके कर्णकीपरे चंचल मनुष्यके शरीरकी क्यागणना है अर्थात् यह तो अवश्य नाशहोगा ॥ ६९ ॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो
दिगम्बरः ॥ कदा शम्भो भविष्यामि
कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ७० ॥

टीका—एकाकी इछा रहित और शांतरूप हाथहीका पात्रबनाये और दिगंबर और कर्मोंकि जड उखाडनेमैं समर्थ ऐसे हम हे शिव कबहोवेगें ॥७०॥

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्

टीका—सब कामनाकों पूरण करनेवाली लक्ष्मी पाइ तो क्या और शत्रुओंके शिरपर पग दिया तो क्या और धनसें मित्रोंका सन्मान किया तो क्या फिर इसदेहसें कल्पभर जावे तो क्या अर्थात् परलोक न बना तो कुछ न किया ॥ ७१ ॥

जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं प-

ट्टसूत्रं ततः किं एका भार्या ततः किं
हयकरिसुगणैरावृतो वा ततःकिं ॥ भ-
क्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वास-
रांते ततः किं व्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथि-
तभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥७२॥

टीका–पुराणी कंथा धारणकरी तो क्या और उज्वल निर्मल वस्त्र अथवा पीतांबर धारण कीया तो क्या और एक स्त्री रही तो क्या अथवा घोडे हाथी सहित अनेक स्त्रियां रही तो क्या और अछे व्यंजन सहित भोजन किये अथवा कुत्सित अन्न सायंकालकों भोजन किये तो क्या फिर औरभि अनेक प्रकारका ऐश्वर्य पाया तो क्या जिस्से भवभय नाशहोजायऐसे ब्रह्म की ज्योति हृदयमैं प्राप्त नहुइ तो सब प्रपंच व्यर्थ है

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं स्नेहो
न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ॥ सं-
सर्गदोषरहिता विजना वनान्ता वैराग्य-
मस्ति किमतः परमार्थनीयम् ॥ ७३ ॥

टीका–सदाशिवकी भक्ति होय और जन्म मरणका भय हृदयमें नहो और बंधुवर्गसें स्नेह न होय और कामदेवका विकार मनसें दूर होय और संसर्ग-

दोषसें रहित निर्जन बनमैं बैठेहों इनसें अधिक क्या वैराग्य यही ईश्वरसें प्रार्थना है ॥ ७३ ॥

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि तद्ब्रह्म
चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ॥ यस्या-
नुषंगिण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः
कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ७४ ॥

टीका–जिस ब्रह्मकें लेशमात्र आनंद पानेवालों-के निकट त्रिभुवनके राजाओंका भोगविलास मूर्खों-के योग्य ठहरता है इसकारणसें उस अनंत अजर परम प्रकाशरूप ब्रह्मका चिंतवनकरो इन विकल्पोंसे क्या फल है अर्थात् देहादि अहंभाव त्यागके ब्रह्मकी चिंताकरो ॥ ७४ ॥

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ॥
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषियेन॥७५॥

टीका–रेचित्त मनकी चपलतासें तूं पातालमैं प्रवेशकर्त्ता है कभि आकाशकों उलंघके जाता है कभि दिशाओंमें भ्रमता है परंतु भूलकेभि कदाचित् हृदयमें स्थित विमल ब्रह्मका स्मरण नहिकरता जिन-

ब्रह्मके स्मरणसें परमानंद मोक्षकों प्राप्तहोता है॥७५॥

रात्रिःसैव पुनः स एव दिवसो मत्वा
बुधा जन्तवो धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥ व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना संसारेण
कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे॥

टीका—वहीरात और वही दिन नित्यहोते हैं यह जानकेंभि बुद्धिमान् मनुष्य उद्योगकर्त्तेहुये उसी प्रतिदिनकी रीतिसें यथार्थ तिस २ कार्यका प्रारंभकरकैं वारंवार कहे और भोगेहुये हैं विषयाजिनमैं ऐसे २ व्यापारोंसे जहां तहां दौडते हैं इस पूर्वोक्त प्रकारके संसारसें निंदित अर्थवालेभि हम मोहसें लज्जायुक्त नहि होते ॥ ७६ ॥

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः॥स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥ ७७ ॥

टीका—भूमिही जिसकी रमणीय शय्या है और भुजारूपी विस्तीर्ण उसीके हैं और आकाशरूपी चंदवा है

और अनुकूल पवनही पंखा है और प्रकाशमान चंद्रमाहि दीपकहै और विरक्तिरूप स्त्रीके संगसें आनंदित शांतपुरुष बडे ऐश्वर्यवान् राजाओंके समान सुखसें शयन कर्त्ते हैं ॥ ७७ ॥

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ॥ भोगः कोपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते यत्स्वादाद्विरसाभवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥ ७८ ॥

टीका—हे जीवात्मन् जिस ब्रह्मज्ञानके आगे त्रैलोक्यका अधिपतिपणा विरस होजाताहै उसको प्राप्त होकर भोजन वस्त्र और मानके लिये भोगोंमें प्रीति मतकर वही भोग सबसें श्रेष्ठ और नित्य उदित और प्रकाशित है जिसके स्वादसें त्रिलोकीके राज्यादिक विषय सब निरस हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कार्मक्रियाविभ्रमैः ॥ मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं स्वा-

त्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ ७९ ॥

टीका—श्रुति स्मृति पुराण और बडे विस्तार पूर्वक शास्त्रोंके पढनेमें क्या फलहै केवल स्वर्गरूपी ग्राममें कुटी बनाके रहनाहि जिसका फल है ऐसे कर्मकांडकि कर्त्तव्यताके विभ्रमसें क्याहै संसारके बंधनरूप दुःखकि रचनाके विध्वंसकरनेकों प्रलयाग्नि सदृश ब्रह्मानंदपदमें प्रवेश करनेके उद्यमविना और सब वनिजवृत्ति व्यापार है ॥ ७९ ॥

आयुःकल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीरर्थाःसंकल्पकल्पाघनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः ॥ कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ताभवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥८० ॥

टीका—यह आयु जलतरंगसी चंचल है और यौवनावस्थाकि शोभा थोडाकाल रहनेवाली है और धनादिक पदार्थ संकल्पमात्र क्षणिक हैं और भोगके समूह वर्षाकालके मेघकी बिजलीसे चंचल हैं और प्यारी स्त्रीकों गलेसें लगाना वहभि बहुत

दिन स्थिर नहि इसलिये हे उत्तम पुरुषो संसार समुद्रकों तिरकें पार होनेकि इच्छा होय तो ब्रह्ममैं चित्तकों लीन करौ ॥ ८० ॥

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मन
स्विनः ॥ शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता
जातु जायते ॥ ८१ ॥

टीका–ब्रह्मके विचारमैं शूरवीर पुरुषकों ब्रह्मांडकी रचना देखनेसें क्या लोभ उपजता है अर्थात् नहि जैसें मछीके चालनेसें क्या समुद्रकों क्षोभउप जता है

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारज
नितं तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जग
दपि ॥ इदानीमस्माकं पटुतरविवेका
ञ्जनजुषांसमीभूतादृष्टिस्त्रिभुवनमपि
ब्रह्म तनुते ॥ ८२ ॥

टीका–जब मेरेमें कामदेवसें पैदाहुवा अज्ञान था तब यह संपूर्ण जगत् स्त्रीरूपही दीखताथा और अब अत्यंत अछे विवेकरूपी अंजन लगानेसें हमारी दृष्टि समान होगई इस्सें सब जगत्कों ब्रह्मरूप देखताहूं

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या व
नान्तस्थली रम्यः साधुसमागमः शम

सुखं काव्येषु रम्याः कथाः ॥ कोपोपाहितबाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते नकिंचित्पुनः ॥ ८३ ॥

टीका–चंद्रमाकी किरण रमणीय हैं और हरित तृणसहित वनकी भूमि रमणीय है और साधूका समागम भला है और शमतारूप सुख अछा है और काव्योंकी कथा रमणीय हैं और क्रोधसें आंसूओंकी बूंदसें चंचल प्यारीका मुख रमणीय है इतने पदार्थ सब रमणीय लगतेथे परंतु अब चित्तमें जगत्की अनित्यता दीखने लगी तब कोई रमणीय नहि ८३

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितःस्वायत्तचेष्टः सदा दानादान विरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥ रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखिर्निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥ ८४ ॥

टीका–ऐसा तपस्वी जन जगत्मैं कोई विरला है कैसे है की भिक्षा मांगके खाना और लोकमध्ये असंग रहना और स्वाधीन चेष्टाकरना और देने

लेनेसें विरक्त रहना और मार्गमें पडे फटे पुराने वस्त्रकी कंथाधारी मान अरु अहंकार रहित और शमसुख ब्रह्मानंदके सुखकी वाछा सहित ॥ ८४ ॥

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः
सुबन्धो जल भ्रातर्व्योम निबद्ध एव
भवतामेष प्रणामाञ्जलिः ॥ युष्मत्संग
वशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मलज्ञाना
पास्तसमस्तमोहमहिमालीये परेब्रह्मणि

टीका—हे पृथ्वीमात हे पवन पिता हे तेज सखा हे जल बंधु हे आकाशभाई तुम पंचतत्वोंकों मेरा नमस्कार है क्योंकि तुमारे संगसें पुण्य बना उस पुण्यके उदय होनेसें ज्ञान निर्मल हुवा और ज्ञान निर्मल होनेसें मोहमहिमा दूर हुई अब हम परब्रह्ममें लीन होते हैं अर्थात् पंचतत्व रचित देहकों ब्रह्मज्ञानके सहायक समझकर प्रणामकर्त्ताहूं फिर तुमसें भेट न होगी ॥ ८५ ॥

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे
जरा यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्
क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि तावदेव
विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्प्रोद्दीप्ते भ

T

वने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥८६॥

टीका–जबतक शरीर अपना नीरोग है और वृद्धावस्था दूर है और जबतक इंद्रियनकी शक्ति न्यून न होय जबतक आयुका क्षय न होय तबतक बुद्धिमान् पुरुषकों उचित है कि अपने कल्याणका यत्न अच्छी तरह करलेना क्योंकि जब घर जलने लगा तब कूप खोदनेका उद्यम करना वृथा है॥८६॥

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या
विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठद
लनैर्नाकं न नीतं यशः ॥ कान्ताकोम
लपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये ता
रुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये
दीपवत् ॥ ८७ ॥

टीका–वादियोंके वृंदकों दमन करनेवाली अरु विनयवान्के योग्य ऐसी विद्या हमने नहि पढी और खड्गके अग्रभागसें हस्तीका कुंभस्थल और पीठके नाशकरके स्वर्गमें अपना यश न पहुंचाया और चंद्रमाकी चांदनीमें सोके सुंदर स्त्रीके कोमल अधर पल्लवका रसभि पान नकिया तो मेरी यह यौवनावस्था

वृथा वितीतभई जैसें सूने मंदिरमें दीपक जलकर आपही शांत होजाता है ॥ ८७ ॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं केषांचि
देतन्मदमानकारणम् ॥ स्थानं विवि
क्तं यमिनां विमुक्तये कामातुराणामति
कामकारणम् ॥ ८८ ॥

टीका—सत्पुरुषोंका ज्ञान मान मदादिकके नाशके लिये ही है और यहि ज्ञान कितनोंके मान मदका वधानेवाला है जैसें एकांत स्थान संयमी पुरुषोंके मुक्तिसाधनका हेतु है और कामीपुरुषोंके कामसाधनका हेतु है ॥ ८८ ॥

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं
जरा यौवनं हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफ
लतां याता गुणज्ञैर्विना ॥ किं युक्तं स
हसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतांतोऽक्ष
मी ह्यज्ञातं स्मरशासनांघ्रियुगलं
मुक्त्वा स्तिनान्यागतिः ॥ ८९ ॥

टीका—सब मनोरथ ह्रदयहीमें जीर्ण होगये और यौवन जराकों प्राप्तहुवा और गुणग्राही पुरुषके बिगर सबगुण निष्फल होगये अब सबका क्षयकारक बल-

वान् काल शीघ्रहि नजीक आता है इस्सें अब हम जाना कि कामनाशक शिवजीके चरण युनुलकों छोडके और दूसरीकोई गति नहीं ॥ ८९ ॥

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु
सुरभि क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति
शाकादिवलितान् ॥ प्रदीप्ते कामाग्नौ
सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं प्रतीकारो
व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ९०

टीका–तृषासें मुख सूकने लगे तब सुगंधि स्वादु जल पीते हैं और क्षुधापीडितहोय तब शाकादि सामग्रीके साथ चावलोंका भोजन कर्त्ते हैं और कामोद्दीपन हुये सुंदर स्त्रीसें आलिंगन कर्त्ते हैं इसमें विचार करोकि यह एकेक व्याधीकी औषधी हैं परंतु मनुष्योंने उलटा इनकों सुखहि मानलिया है ॥ ९० ॥

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै
रर्चयित्वाविभो त्वां ध्येये ध्यानं नियोज्य
क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले ॥ आत्मा
रामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादा
त्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तवचर
णरतो ध्यानमार्गैकप्रश्नः ॥ ९१ ॥

टीका–हे कामदेवके शत्रु शिवजी गंगाजलमें स्नानकरकैं सुंदर पवित्र फल फूलादिकनसें तुमारी पूजा करकें पर्बतकी कंदरामें पत्थरकी शय्यापर बैठ ध्यानयोग्य तुम्हारी मूर्त्तिमें ध्यानावस्थित होकें गुरुके वचन मान आत्मारामी और फलाहारी होके इस दुःखसें कबमें छूटुंगा ॥ ९१ ॥

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं
तरूणां त्वचः सारंगाः सुहृदो ननु क्षि
तिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥ येषां नि
र्झरमम्बुपानमुचितं रत्येव विद्यांगना
मन्येते परमेश्वराःशिरसि यैर्बद्धो न से
वाञ्जलिः ॥ ९२ ॥

टीका–जिन्होंके पर्बतकी शिला शय्या है और पर्बतकी कंदरा घर है और वृक्षकी छाल वस्त्र है और हिरन मित्र हैं और वृक्षोंके कोमल फलका भोजन है और झरनेका स्वछ जल पान है और विद्यारूपी स्त्रीसें जिनकी प्रीति है ऐसे पुरुषोंको हम परमेश्वर मानते हैं क्योंकि जिन्होंने सेवाकरनेके लिये किसीकों प्रणाम न किया ॥ ९२ ॥

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चु-

म्बिनीवच्छटायां सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां
वटविटपभवैर्वल्कलैःसत्फलैश्च ॥ कोऽयं
विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुः
ष्वासिकानां वक्रं वीक्षेत दुःस्थे यदि
हि न बिभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ९३

टीका–निश्चयकर जो आपके कुटुंबपर प्रीति न करै तो शिवजीके मस्तकरूप हैं तट जिनके और वटवृक्षकी डालियूंसे उत्पन्न भये वल्कल अरु अछे अछे फल तिनसें भलेप्रकार निर्वाह करसके तो ऐसी श्रीगंगाजी छते कौन विद्वान् है सो विपत्तिसें पैदा हुवा ज्वरके रोगसे लंबे लंबे श्वासकों लेनेवाली स्त्रियोंके मुखकों देखे ॥ ९३ ॥

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्राति
तीव्रं तपः कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं
भिक्षाटनं मण्डनम् ॥ आसन्नं मरणं च
मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते तां काशीं
परिहृत्य हन्तविबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥

टीका–जिस काशीके उद्यानमे जाके नानाप्रकारके भोजनकरना और कठिनसें कठिन तप करना और कौपीन पहिरनाही सुंदर वस्त्र है और भिक्षा

मांगनाहि जहां आभूषण है और मृत्युआनाहि जह मंगलसमान है ऐसी काशीकों छोडके पंडित लोग अन्यत्र क्योंवसते हैं ॥ ९४ ॥

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति
नाथो यदि स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति
प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ॥ चेतस्ता
नपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीम
शर्मप्रदं ॥ ९५ ॥

टीका—यह तेरे आनेका समय नहि अबि स्वामी एकांतमे बैठे निद्रालेते हैं तुम यहांसे उठो जो तुमकों दोडीपर बैठा देखेगा तो प्रभु हमपर कोपकरेगा। ऐसे वचन जिनके द्वारपर द्वारपाल बोलते हैं उनकों त्यागकर रेचित्त विश्वेश्वरके द्वारपर जा जहां कोई रोकनेवालानही और जहां कठोर वचन सुननेमें नहि आते और अत्यंत निर्मल सुखके देनेवाला है ॥ ९५॥

प्रियसखि विपद्दण्डव्रातप्रतापपरंपराति
परिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः
खलः ॥ मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रग

लभकुलालवद्भ्रमयति मनो नो जानी
मः किमत्र विधास्यति ॥ ९६ ॥

टीका—हे प्रियसखि बुद्धि जैसें कुंभकार मृत्तिकाका पिंड बनाके बलात्कारसें भ्रमाताहै तैसें यह दुष्ट ब्रह्मा विपत्तियोंकी पंक्तिके समूहका जो प्रताप उसकी परंपरासे अत्यंत चंचल चितारूपी चक्रपर रखकर मन कों भ्रमाता है सो न जानें क्या करेगा अर्थात् विधिका विलसित कोइ नहीं जानता ॥ ९६ ॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा
जगदन्तरात्मनि॥तयोर्न भेदप्रतिपत्ति-
रस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे

टीका—जगत्के ईश्वर शिवजी और जगत्के अंतर्यामी जनार्दन विष्णु इन दोनोंमें मुजकों कुछ भेद नहि दीखता तथापि जिनके भालमें चंद्र विराजमान हैं उन्हींमै मेरी प्रीति है ॥ ९७ ॥

रेकंदर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटं
कारवै रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं
त्वं वृथा जल्पसि ॥ मुग्धे स्निग्धविद
ग्धक्षेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेतश्चुम्बि
तचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते॥९८॥

T

टीका—रे कामदेव धनुषकी टंकारके शब्दोंसे हाथकों क्यौं उठाता है और रे कोकिल कोमल मधुर शब्दोंसें तू क्यौं वृथा बोलता है और हे मुग्धे स्त्री तेरे स्नेहयुक्त चतुर मधुर ऐसे चपल नेत्रोंके चलानेसे क्या प्रयोजन पूर्वोक्त सबनका श्रम करना व्यर्थ है क्यौंकि अब हमारे चित्तने शिवजीके चरणके ध्यानरूप अमृतकौ पान करा है ॥ ९८ ॥

कौपिनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुन
स्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमश
नं शय्या श्मशाने वने ॥ मित्रामित्रस
मानतातिविमला चिन्तातिशून्यालये
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं
तिष्ठति ॥ ९९ ॥

टीका—ऐसा योगी सुखसे रहता है जिनके शतखंडकी जीर्ण कौपीन है और कंथाभि ऐसीहि शतखंडकी है और निश्चिंत सुखसाध्य भिक्षा है और श्मशानमें तथा वनमें जिनकी शय्या है और शत्रुमें मित्रमें समानता है और शून्यालयमें अत्यंत निर्मल ध्यानलक्षण चिंता है ॥ ९९ ॥

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं

T

भवस्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः ॥ आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां कामोच्छित्तिवशेस्वधामनियदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥ १०० ॥

टीका—अनेक प्रकारके भोग हैं वो तो सब नाशवान् हैं उनके संसर्गसे भव कहिये वारंवार जन्म-मरण है रेलोको किसकेलिये संसारचक्रमें भ्रमतेहो ऐसी चेष्टासें क्या फल मिलता है जो तुम हमारे वचनका विश्वास मानो तो कामदेवकों जीतनेकेलिये आपके शरीरके बीच आशापाश छेदनकर शुद्धहुए ऐसे चित्तकों लगावो ॥ १०० ॥

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायतामानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमंकेशयाः ॥ अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिक्षीयते

टीका—जिन उत्तम पुरुषोंके पर्वतकी गुफामें रहते हैं अरु परब्रह्मकी ज्योतिका ध्यान करते हैं उनके आनंदके आंसु पक्षी निदरहोके गोदमें बैठके

पीते हैं वह पुरुष धन्य हैं और हम लोगोंकी तो अवस्था केवल मनोरथहीके मंदिरकी बावडीके तट- पर जो क्रीडाका वन तिसमैं लीलाके कौतुक करते- ही आयु क्षीण होती है अर्थात् मिथ्या कल्पनाहीमें जन्म व्यतीत होता है ॥ १०१ ॥

आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं
यौवनं संतोषो धनलिप्सया शमसुखं
प्रौढांगनाविभ्रमैः ॥ लोकैर्मत्सरिभिर्गु
णा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थैर्येण
विभूतिरप्यपहता ग्रस्तं न किं केन वा

टीका—मृत्युसें जन्म नाश होता है और जरासें यौवन नाश होता है और धनकी वांछाकरकें संतो- षका नाश होता है और सुंदरस्त्रियोंके हावभावसें शांतिसुख मिटजाता है और मत्सरी लोकोंसें गुणका विनाश होता है और सर्पादिकनसे वनभूमि सेवित है और दुर्जन लोकोंसें राजा ग्रसित होरहे हैं और अधीरतासें विभूतिका नाशहोता है तो देखो इस संसारमें किसनें किसकों ग्रसित नहिकरा ॥ १०२ ॥

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्य
मुन्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृ

तद्द्वारा इव व्यापदः ॥ जातं जातमव
श्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्त
त्किंनाम निरंकुशेन विधिनायन्निर्मितं
सुस्थितम् ॥ १०३ ॥

टीका–निरंकुश विधाताने कौनसि वस्तु थिर वनाई सो कहौ नानाप्रकारकी अनेक आधि व्याधिसैं मनुष्योंकी आरोग्यता चलीजाती है और जहां लक्ष्मीहोती है वहां विपत्ति अवश्य आजाती है और जो जन्मता है उसकों मृत्यु अवश्य शीघ्र आपका करलेती है अर्थात् जन्मै जिसका मृत्युहोजाता है इस्सैं थिरवस्तु कोईभि नहि ॥ १०३ ॥

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः
स्थीयते गर्भमध्ये कान्ताविश्लेषदुःखव्य
तिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ॥ नारी
णामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभा
वोऽप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या वदत
यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥

टीका–यह मनुष्य बाल्यावस्थामें अपवित्र वस्तुसें भरा ऐसें गर्भके वीचमैं हाथ पांव संकोचन करकें वडे कष्टसें रहता है और युवा अवस्थामैं स्त्रियोंके

वियोगरूप क्लेशसे दुःखित रहता है और वृद्धावस्थामें नारीयोंसे निरादर पाकर नीचा शिर किये शोचमें पड़ा रहता है तो रे मनुष्यो इससंसारमें कोई थोडाभि सुख होय तो कहो ॥ १०४ ॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं
गतं तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बा
लत्ववृद्धत्वयोः ॥ शेषं व्याधिवियोगदुः
खसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारित
रंगचंचलतरे सौख्यं कुतःप्राणिनां ॥

टीका–प्रथमतो मनुष्यकी आयुही सौं वर्षकी है उस्मेंसे आधि ५० वर्षकी सोनेहीसें रात्रीमें चलीगई शेष पचास वर्ष रहैं उनका १ तृतीयभाग बाल्यपनेमें जाता है और दूसरा तृतीयभाग वृद्धावस्थामें जाता है शेष रहा सो व्याधि वियोग दुःख पराईसेवा कलह शोक हर्ष हानि लाभ इत्यादि नानाक्लेशसें व्यर्थ व्यतीतहोता है इसरीतिसें सौ वर्षका जीवनाभि निश्चितनहीं यह जीवन तो जलकी तरंगके माफक चंचल है इसमें प्राणियोंको सुख कहाँसे प्राप्त होगा ॥ १०५ ॥

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्य

हो दुष्करं यन्मुंचंत्युपभोगकांचनधना
न्येकांततो निःस्पृहाः ॥ न प्राप्तानि
पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं
न शक्ता वयं ॥ १०६ ॥

टीका–ब्रह्मज्ञानके विवेकी निर्मल बुद्धिवान् पुरुष यह वडे कठिन व्रतकौं धारण कर्त्ते हैं क्या है कि उपभोग भूषण वस्त्र चंदनादि तथा धनादिक सब त्यागदेते हैं और निरंतर निस्पृह वांछारहित रहते हैं अरु हमकौं तो यह वस्तु आगल न मिली और अबभि है नहि और आगे मिलेगा ऐसा निश्चय नहि तथापि यह वांछामात्र परिग्रहभि मेरेसैं त्याग नहि हो सकता ॥ १०६ ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रो-
गाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्॥आयुः
परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोक
स्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥१०७

टीका–यह जरा वाघनीकीपरे आगेस्थित रहती है और रोग शत्रुकीपरे देहकौं प्रहारकरते हैं और प्रतिदिन आयु क्षीणहोती जाती है जैसें फूटे घडेसैं पांणि

निकलताजाय तैसें ऐसी संसारकी अवस्था है तथापि यह लोक अपना बुरा होय वही काम कर्त्ते हैं यह बडा आश्चर्य है ॥ १०७ ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरे पुरुषरत्नम
लंकरणं भुवः ॥ तदपितत्क्षणभंगु क-
रोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः १०८

टीका—बडे कष्टकी बात है देखो ब्रह्माकि मूर्खताकि प्रथम सब गुणनकि खान अरु पृथ्वीके आभूषण रूप पुरुषरत्नकौ उत्पन्न कर्त्ता है फिर उसहीकि देहकों क्षणभंगुरकर्त्ता है यहि मूर्खता है ॥१०८॥

गात्रं संकुचितंगतिर्वि गलिता भ्रष्टा च
दन्तावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता
वक्त्रं च लालायते॥वाक्यं नाद्रियते च बा
न्धवजनो भार्या न शुश्रूषते हा कष्टं
पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोप्यमित्रायते॥

टीका—जिनका शरीर संकुचित हुवा और दृष्टि नष्टभईऔर दांतोंकि पंक्ति गिरगई और दृष्टि नष्ट भई और बधिरता वढगई और मुखसें लाल टपकनेलगी और बंधुजन वाक्यका आदरनहिंकर्त्ते और स्त्रीभि सेवानहि कर्त्ती हा इति खेदे बडे कष्टकी बात

है कि वृद्ध पुरुषके पुत्रभि शत्रुसमान होजाते हैं ॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा का
मरसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च
संपूर्णविभवः ॥ जराजीर्णैरंगैर्नट इव
वलीमंडिततनुर्नरः संसारांते विशति
यमधानीजवनिकाम् ॥ ११० ॥

टीका—यह पुरुष क्षणमें बालरूप होके क्षणमैं कामरसिक जवान् होजाता है और क्षणमें दरिद्री क्षणमैं धनाढ्य और क्षणमें जरासैंजीर्ण अंगोंसे शरीरके चर्मको सलपडरहा ऐसें नटकीमाफक अनेक रूप धारकें यह मनुष्य मरणसमय यमपुरीकों जाता है ॥

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा
सुहृदि वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमश
यने वा दृषदि वा ॥ तृणे वा स्त्रैणे वा
मम समदृशो यांति दिवसाः क्वचित्पु
ण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥

टीका—सर्प अथवा मुक्ताफलका हार बलवान्-रिपु अथवा मित्र मणि अथवा मृत्पिंड पुष्पोंकि शय्या अथवा पाषाणमें तृणमें अथवा स्त्रीजित पुरुषोंमें

इन सब
जपते हमारे

॥ इति श्री
चित्ता भर्तृहा
भाषाटीका सं
संवत १९५०

प्र० र० प्रे

T